अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2025

अल-रिसाला

जनवरी-फ़रवरी 2025

CPS International
centre for peace & spirituality

माहनामा 'अल-रिसाला' को हिंदी स्क्रिप्ट में लाने की यह हमारी एक कोशिश है। मुश्किल उर्दू अल्फ़ाज़ को भी आसान कर दिया गया है, ताकि ज़्यादा-से-ज़्यादा लोग इसे पढ़कर फ़ायदा उठाएँ और अपनी ज़िंदगी, अपनी शख़्सियत में मुस्बत (positive) बदलाव ला सकें।

नीचे दी गई हमारी वेबसाइट और सोशल मीडिया पेजिस से मज़ीद फ़ायदा उठाएँ।

संपादकीय टीम

आरिफ़ हुसैन आलम, सैफ़ अनवर
मोहम्मद आरिफ़, फ़रहाद अहमद
ख़ुर्रम इस्लाम क़ुरैशी, इरफ़ान रशीदी

Centre for Peace and Spirituality International
1, Nizamuddin West Market,
New Delhi-110013
info@cpsglobal.org
www.cpsglobal.org

cpsglobal.org
twitter.com/WahiduddinKhan
facebook.com/maulanawkhan
youtube.com/CPSInternational
+91-99999 44118
t.me/maulanawahiduddinkhan
linkedin.com/in/maulanawahiduddinkhan
instagram.com/maulanawahiduddinkhan

To order books of
Maulana Wahiduddin Khan, please contact
Goodword Books
Tel. 011-41827083,
Mobile: +91-8588822672
E-mail: sales@goodwordbooks.com

Goodword Bank Details
Goodword Books
State Bank of India
A/c No. 30286472791
IFSC Code: SBIN0009109
Nizamuddin West Market Branch

विषय-सूची

ज़िंदगी क़ीमती कैसे	4
नए साल के लिए एजेंडा	5
फुल स्टॉप नहीं	11
बुराई को रोको	12
तारुफ़-ए-जन्नत	14
जन्नत का रियलाइज़ेशन	14
हिदायत का क़ानून-ए-फ़ितरत	16
तस्बीह-ए-फ़ातिमा का सबक़	17
इस्लाम में औरत	19
क़व्वाम का मतलब क्या है?	21
क़ुरआन समझने की कुंजी	22
फ्रीडम और सरेंडर के दरमियान	23
ग़ुस्सा नहीं	25
हकीमाना कलाम	26
हौसला न हारो	28
आइडियोलॉजी की ताक़त	29
एहसास-ए-गुनाह	31
दुआ की हक़ीक़त	33
ज़ुनूब की माफ़ी	34

ज़ुहद एक अज़ीम अमल 35
तवाज़ो की सिफ़त 36
दूसरा क़ुरआन 38
एक ख़त 39
ख़त्म-ए-नबुवत 41
दीन की सियासी ताबीर 42
आलमी इस्लामी इत्तिहाद 44
ज़वाल-ए-उम्मत 46
ख़ुदाई हुक्म 49
तामीरी तरीक़ा 52
एक इंटरव्यू 53
डायरी : 1986 57
शख़्सियत-परस्ती, तर्बियत-साज़ी 61
ख़बरनामा इस्लामी मर्कज़— 284 64

ज़िंदगी क़ीमती कैसे

अपनी ज़िंदगी को क़ीमती बनाने का राज़ क्या है? मेरे ख़याल में इसका राज़ है— आदमी के अंदर फ़ुरक़ान की सलाहियत (art of differentiation) का पैदा होना यानी चीज़ों को एक-दूसरे के मुक़ाबले में फ़र्क़ करके देखना। जो लोग तमीज़ की क़ुव्वत से बे-ख़बर हों, वे मुख़्तलिफ़ रास्तों में दौड़ते रहेंगे और सही रास्ता इख़्तियार नहीं कर पाएँगे।

इस आर्ट का एक पहलू यह है कि चीज़ों के दरमियान डी-लिंकिंग की सलाहियत इंसान के अंदर मौजूद हो। जिन लोगों के अंदर यह आर्ट मौजूद हो, वह अपने वक़्त को बे-फ़ायदा कामों में उलझाने से बचा लेंगे। वे एक और दूसरी चीज़ के फ़र्क़ को जानकर अपनी कोशिश को ज़्यादा दुरुस्त तौर पर इस्तेमाल करेंगे।

आर्ट ऑफ़ डिफ़रेंशिएशन आने से ज़िंदगी क़ीमती कैसे हो जाती है? वह इस तरह कि ऐसा आदमी इससे बच जाता है कि वह काम के फ़र्क़ को न जाने और ग़ैर-मुताल्लिक़ चीज़ों में डिस्ट्रैक्ट होकर अपने वक़्त को ज़ाया करता रहे। इसी को क़ुरआन में फ़ुरक़ान कहा गया है। क़ुरआन के अलफ़ाज़ ये हैं—

يَاأَيُّهَا الَّذِينَ آمَنُوا إِنْ تَتَّقُوا اللهَ يَجْعَلْ لَكُمْ فُرْقَانًا.

"ऐ ईमान वालो, अगर तुम अल्लाह से डरोगे, तो वह तुम्हारे लिए फ़ुरक़ान अता करेगा।" (क़ुरआन, 8:29)

तक़्वा से फ़ुरक़ान कैसे पैदा होता है? तक़्वा आदमी को हस्सास बनाता है। ऐसे आदमी को इस बात की फ़िक्र हो जाती है कि वह ग़लत काम न करे, ताकि वह अल्लाह की पकड़ से बच जाए। जिस आदमी

के अंदर यह मिज़ाज पैदा हो जाए, वह इस क़ाबिल हो जाएगा कि वह कंडिशनिंग की नफ़्सियात से ऊपर उठ कर दुरुस्त मंसूबा-बंदी करे। वह अमल करने से पहले सोचे। वह दूसरों से मश्वरा करे। वह ऑब्जेक्टिव माइंड के साथ मामले में ग़ौर करे।

ऐसा आदमी इस क़ाबिल हो जाता है कि वह डी-लिंकिंग पॉलिसी इख़्तियार करे। वह मुताल्लिक़ (relevant) और ग़ैर-मुताल्लिक़ (irrelevant) के फ़र्क़ को जाने। ऐसे आदमी की मंसूबा-बंदी ज़्यादा दुरुस्त और मब्नी-बर-हक़ीक़त होगी। जिस आदमी के अंदर यह सलाहियत पाई जाए, वह यक़ीनन कामयाब इंसान है।

नए साल के लिए एजेंडा

एजेंडा हमेशा दो चीज़ों की बुनियाद पर बनता है— माज़ी (बीते हुए कल) का तजुर्बा और हाल व मुस्तक़बिल के इमकानात (opportubities)। इन दोनों पहलुओं को देखते हुए मुसलमानों का एजेंडा यह होना चाहिए कि वे माज़ी की ग़लतियों को दोबारा न दोहराएँ और नए इमकानात को जानकर उन्हें बख़ूबी तौर पर इस्तेमाल करें।

इस एतिबार से ग़ौर कीजिए, तो हिंदुस्तानी मुसलमानों के लिए पहला काम यह है कि वे नेगेटिव (negative) तर्ज़-ए-फ़िक्र को हमेशा के लिए छोड़ दें और पूरी तरह मुसबत (positive) तर्ज़-ए-फ़िक्र को इख़्तियार कर लें। दौर-ए-अव्वल के मुसलमानों ने जो बे-नज़ीर कामयाबी हासिल की, उसका सबसे बड़ा राज़ यह था कि उनमें का हर फ़र्द मुकम्मल मआनों में मुसबत सोच का मालिक था। वह क़ुरआन के मुताबिक़ 'उस्र में युस्र' (94:5-6) का पहलू तलाश कर लेता था। वह बज़ाहिर शिकस्त के वाक़ये में फ़त्ह का राज़ दरियाफ़्त कर लेता था।

दूसरे ख़लीफ़ा उमर फ़ारूक़ रज़ियल्लाहु अन्हु के ज़माने में 14 हिजरी में ईरान फ़त्ह हुआ। फ़त्ह से पहले का वाक़या है। ईरान के शहनशाह यज़्दगर्द ने मुस्लिम लश्कर के सरदार साद बिन अबी वक़्क़ास को पैग़ाम भेजा कि बातचीत के लिए अपना सफ़ीर भेजें। चुनाँचे मुसलमानों का एक वफ़्द ईरानी शहनशाह यज़्दगर्द से गुफ़्तगू के लिए उसके दरबार में गया। किसी बात पर यज़्दगर्द नाराज़ हो गया और उसने मुस्लिम डेलीगेशन की बेइज़्ज़ती के लिए उनके एक रुक्न आसिम बिन अम्र के सिर पर मिट्टी का टोकरा रखवाकर वापस कर दिया। वे अपने सिर पर मिट्टी का टोकरा लिये हुए साद बिन अबी वक़्क़ास के पास पहुँचे, मगर हज़रत साद ने इसे नेगेटिव तौर पर नहीं लिया, बल्कि यह कहा कि तुम्हें ख़ुशख़बरी हो— "ख़ुदा की क़सम, अल्लाह ने हमें उनके इक़्तिदार की कुंजियाँ दे दीं।"

أَبْشِرُوا فَقَدْ وَاللهِ أَعْطَانَا اللهُ أَقَالِيدَ مُلْكِهِمْ.

तारीख़ बताती है कि मुस्लिम सल्तनत हर रोज़ तरक़्क़ी करती गई और ईरानी सल्तनत सिमटती चली गई।

(अल-बिदाया व अल-निहाया, जिल्द 9, सफ़्हा 628)

यही इस्लाम की तालीम है कि 'उस्र में युस्र' देखो— नेगेटिव वाक़ये में भी मुसबत पहलू तलाश करो।

इसलिए मुसलमानों को चाहिए कि वे शऊरी तौर पर, न कि मजबूरी के तहत, नेगेटिव सोच और नेगेटिव बोली को मुकम्मल तौर पर तर्क कर दें। वे शऊरी फ़ैसले के तहत मुसबत तर्ज़-ए-फ़िक्र को पूरी तरह अपना लें।

मौजूदा दौर की सबसे अच्छी अलामत यह है कि मॉडर्न आर्थिक इनफ़िजार (explosion) ने दुनिया के सियासी, मआशी और समाजी हालात को पूरी तरह से बदल दिया है। इस तब्दीली का सबसे ज़्यादा

पुर-उम्मीद पहलू यह है कि हर क़िस्म के मौक़े हर एक के लिए ला-महदूद हद तक खुल गए हैं। इसकी एक अलामत यह है कि जुमे और ईद के मौक़े पर मस्जिदों के सामने कारों की भीड़ लग जाती है और ठेले वालों की जेब में स्मार्ट फ़ोन बजकर यह ऐलान करता है कि मआशी मौक़े अब इतने ज़्यादा बढ़ गए हैं कि ख़ास से लेकर आवाम तक हर एक को इसका फ़ायदा पहुँच रहा है। इसी तरह सियासी और समाजी शोबों में भी हालात पूरी तरह बदल गए हैं।

इन तब्दीलियों का पहला नतीजा यह हुआ है कि मुसलमानों के लिए अब दुनियावी तरक़्क़ी के एतिबार से सुरक्षा या हिफ़ाज़त का कोई मसला बाक़ी नहीं रहा। अब मुसलमानों को सिर्फ़ यह करना है कि वे नए हालात और नए मौक़ों को पहचानें और अपने अंदर वह सलाहियत पैदा करें, जिनके ज़रिए वे नए मौक़ों को इस्तेमाल कर सकें। तमसील की ज़बान में यह कहा जा सकता है कि बारिश हो चुकी है। अब किसी किसान को सिर्फ़ उसकी बे-अमली ही महरूम रख सकती है— दुरुस्त मंसूबा-बंदी के साथ अमल करने वाले किसान के लिए अब महरूमी का कोई सवाल नहीं। यहाँ इस सिलसिले में चंद ज़रूरी पहलुओं की तरफ़ इशारा किया जाता है—

1. नए हालात ने अंग्रेज़ी ज़बान और कंप्यूटर लिटरेसी की अहमियत बहुत ज़्यादा बढ़ा दी है यानी इंफ़ॉर्मेशन टेक्नॉलॉजी। अब तरक़्क़ी के लिए अंग्रेज़ी ज़बान और कंप्यूटर लाज़िमी हो चुके हैं। दारुल उलूम देवबंद ने इस अहमियत को महसूस किया और अपने यहाँ अंग्रेज़ी और कंप्यूटर का कोर्स बाक़ायदा तौर पर जारी कर दिया। मैं समझता हूँ कि मुल्क के तमाम मदरसों और दीनी इदारों को बिला-ताख़ीर ऐसा ही करना चाहिए।

2. अब तक मुस्लिम नौजवानों में यह रुझान रहा है कि वे ज़्यादातर आर्ट साइड (Humanities) में दाख़िला लेकर पढ़ते थे। यह

रुझान अब ज़माने के ख़िलाफ़ रुझान बन चुका है। आर्ट साइड में बी.ए. और एम.ए. करने के मआशी एतिबार से अब बहुत कम फ़ायदा रह गया है। मुस्लिम नौजवानों को अब बिला-ताख़ीर यह करना है कि वे अंग्रेज़ी ज़बान और टेक्निकल सब्जेक्ट्स में अच्छी लियाक़त पैदा करें। ख़ुशक़िस्मती से आजकल हर जगह इसकी सहूलियतें पैदा हो गई हैं। मुस्लिम नौजवानों को इन सहूलियतों से भरपूर फ़ायदा उठाना चाहिए।

3. यह एक आम मुशाहिदा है कि मुसलमान शादियों में और दूसरी तक़रीबात में बहुत ज़्यादा खर्च करते हैं।

   इस क़िस्म का खर्च फ़िक्री पस-मांदगी की अलामत है। क़दीम ज़माने में जब खर्च के ज़राए बहुत महदूद थे, तो लोग शादियों और तक़रीबात में अपना पैसा खर्च किया करते थे। अब पैसे के इस्तेमाल के दूसरे ज़्यादा वसीअ और तामीरी ज़राए वजूद में आ चुके हैं। मुसलमानों को चाहिए कि वे अपने पैसे को जदीद तामीरी कामों में खर्च करना सीखें। मसलन— आला मेयार के स्कूल, ट्यूशन ब्यूरोज़, प्रोफेशनल ट्रेनिंग सेंटर, टेक्निकल इंस्टीट्यूट्स वग़ैरह।

4. मौजूदा ज़माने में हर चीज़ का मेयार बदल गया है। मसलन— पिछले दौर में ख़ानदानी मंजन की अहमियत हुआ करती थी। अब साइंटिफ़िक तरीक़ों से बनाए हुए टूथपेस्ट ने अहमियत इख़्तियार कर ली है। पिछले दौर में शाही नुस्ख़े बड़ी चीज़ समझे जाते थे। अब सारी अहमियत साइंटिफ़िक फ़ॉर्मूले की हो गई है। पहले ज़माने में बैलगाड़ी लोहे के धुरे पर चलती थी, अब गाड़ियाँ बॉल बेयरिंग के ऊपर दौड़ती हैं। मुसलमानों को चाहिए कि ज़माने की इस तब्दीली को समझें और नई टेक्नीक को सीखकर हर मैदान में आला तरक़्क़ी हासिल करें।

5. 1947 के बाद मुख़्तलिफ़ अस्बाब से मुसलमान रिज़र्वेशन को अपने लिए कामयाबी का ज़रिया समझते थे। जदीद हालात ने सारी अहमियत कॉम्पटिशन को दे दी है। इसका नतीजा यह हुआ है कि अब रिज़र्वेशन की बात एक ख़िलाफ़-ए-ज़माना नारा बन चुका है। अब मुसलमानों को चाहिए कि वे अपनी मिल्ली डिक्शनरी से रिज़र्वेशन का लफ़्ज़ निकाल दें और सारी तवज्जोह मेहनत और मंसूबा-बंदी पर लगाएँ। मौजूदा ज़माने में यही तरक़्क़ी का वाहिद रास्ता है।

6. 1947 के बाद मुसलमानों में सियासी एतिबार से नेगेटिव पॉलिसी का तरीक़ा राइज हो गया। यह तरीक़ा मुस्तक़िल मिल्ली मफ़ाद के लिए सख़्त घातक है। वह जम्हूरी तक़ाज़ों के सरासर ख़िलाफ़ है। मुसलमानों को चाहिए कि वे पॉज़िटिव सियासी पॉलिसी को इख़्तियार करें। यही मौजूदा ज़माने में उनके लिए कामयाबी का वाहिद रास्ता है।

7. इंतिख़ाबी पॉलिसी के मामले में मुसलमानों को अपना ज़ेहन मुकम्मल तौर पर बदलना है। अब तक उनका रुझान इस मामले में यह रहा है कि पूरे मुल्क के लिए एक मिल्ली पॉलिसी इख़्तियार करें। मौजूदा हालत में इस क़िस्म की इंतिख़ाबी पॉलिसी मुसलमानों के लिए मुफ़ीद नहीं। मुफ़ीद सियासी पॉलिसी सिर्फ़ यह है कि मुसलमान मकामी हालात के एतिबार से अलग-अलग अपनी इंतिख़ाबी पॉलिसी बनाएँ। वे मुल्की पॉलिसी का तरीक़ा ख़त्म कर दें।

8. 1947 के बाद से मुसलमानों के ऊपर तहफ़्फ़ुज़ाती ज़ेहन ग़ालिब रहा है। वे मिल्ली शनाख़्त के तहफ़्फ़ुज़ को सबसे बड़ी चीज़ समझते रहे हैं। मौजूदा ग्लोबलाइज़ेशन के दौर में इस क़िस्म की तहफ़्फ़ुज़ाती पॉलिसी ग़ैर-मुफ़ीद है। मुसलमानों के लिए सही पॉलिसी यह है कि वे मिल्ली शनाख़्त को अपना कंसर्न बनाने

के बजाय पैग़ाम-ए-ख़ुदावंदी को तमाम इंसानों तक पहुँचाने को अपना निशाना बनाएँ। वे मुल्क में 'देने वाले' (giver) गिरोह की हैसियत से अपना मुक़ाम हासिल करने की कोशिश करें।

9. मॉडर्न ज़माने की ख़ुसूसियात में से एक ख़ुसूसियत यह है कि उसने मेल-मिलाप और इख़्तिलात (interaction) को बहुत ज़्यादा बढ़ा दिया है। यह तब्दीली तरक़्क़ियाती सरगर्मियों से बहुत ज़्यादा जुड़ी हुई है। ऐसी हालत में अब 'अलाहिदा मुस्लिम पॉकेट' का तसव्वुर एक पुराना तसव्वुर बन चुका है। अब मुसलमानों को 'अलाहिदा मुस्लिम पॉकेट' जैसी पॉलिसी को मुकम्मल तौर पर ख़त्म कर देना चाहिए। मॉडर्न ज़माने में तरक़्क़ी के आला मुक़ाम पर पहुँचने के लिए यह बेहद ज़रूरी है।

10. पिछले सौ साल से भी ज़्यादा मुद्दत से पूरी दुनिया के मुसलमानों ने अपनी आफ़ाक़ियत (universality) को मिल्लत तक महदूद कर रखा है। मॉडर्न ज़माने का तक़ाज़ा है कि वे इस महदूदियत को ख़त्म कर दें। वे अपनी आफ़ाक़ियत को पूरी इंसानियत के साथ जोड़ें। वे जदीद इस्तिलाह के मुताबिक़ अपने आपको 'ग्लोबल विलेज' का एक हिस्सा समझें। वे बैनुल-मिल्ली (intra-nation) सियासत के बजाय बैनुल-इंसानी सियासत को इख़्तियार करें। इसी आफ़ाक़ियत में उनकी दीनी और मिल्ली तरक़्क़ी का राज़ छुपा हुआ है।

इस सिलसिले में सबसे ज़्यादा अहम बात यह है कि मौजूदा ज़माना मंसूबा-बंदी के साथ काम करने का ज़माना है। न सिर्फ़ हिंदुस्तानी मुसलमान, बल्कि सारी दुनिया के मुसलमान मौजूदा ज़माने में मंसूबा-बंदी के साथ काम करने में नाकाम रहे हैं। इसका बुनियादी सबब यह है कि मंसूबा-बंदी अमली इमकानात को सामने रखकर की जाती है, जबकि मुसलमानों का हाल यह है कि वे सिर्फ़ अपने जज़्बात

को जानते हैं। वे अपने जज़्बात और उमंगों की बुनियाद पर अपने अमल का नक़्शा बनाते हैं। अपने इस मिज़ाज की बिना पर वे जज़्बाती इक़दाम तो बहुत करते हैं, मगर मंसूबा-बंद अमल में वे नाकाम रहते हैं। मुसलमानों को अपने इस मिज़ाज को बदलना होगा। अगर उन्होंने अपने इस मिज़ाज पर क़ाबू न पाया, तो मुस्तक़बिल में भी वे उसी तरह नाकामी की मिसाल क़ायम करेंगे, जिस तरह वे माज़ी में नाकामी की मिसालें क़ायम करते रहे हैं।

मौजूदा मुसलमानों को अगर मुझे एक मशवरा देना हो, तो मैं कहूँगा कि जज़्बाती कार्रवाइयों से बचिए और सोचे-समझे अमल का तरीक़ा इख़्तियार कीजिए और फिर कामयाबी आपके लिए उतनी ही यक़ीनी बन जाएगी, जितनी आज की शाम के बाद कल की सुबह सूरज का निकलना।

फ़ुल स्टॉप नहीं

तारीख़ में बे-शुमार ऐसी मिसालें मिलती हैं, जबकि एक मर्द या औरत को कोई हादसा पेश आया हो और इस हादसे ने उसे बज़ाहिर माज़ूर (disabled) बना दिया हो, लेकिन इस इंसान ने अपनी ज़िंदगी की री-प्लानिंग की और अपने अमल से यह साबित किया कि अगरचे बज़ाहिर वह एक माज़ूर इंसान है, लेकिन वह एक और पहलू से पूरी तरह 'डिफरेंटली एबल्ड इंसान' (differently abled person) है। इस हक़ीकत को मारूफ़ साइंटिस्ट स्टीफन हॉकिंग (1942-2018) की मिसाल से हम समझ सकते हैं। वाक़या यह है कि इस दुनिया में इंसान का सफ़र कभी रुकता नहीं। अगर उसकी पहली प्लानिंग नतीजा-ख़ेज़ साबित न हो, तो वह दूसरी प्लानिंग (re-planning) के ज़रिए अपने आपको कामयाब बना सकता है, बशर्ते वह हर रुकावट के बाद अपने सफ़र को अज़ सर-ए-नौ जारी रखने का आर्ट जान ले।

बुराई को रोको

एक हदीस-ए-रसूल इन अलफ़ाज़ में आई है—

مَا مِنْ قَوْمٍ يُعْمَلُ فِيهِمْ بِالْمَعَاصِي ثُمَّ يَقْدِرُونَ عَلَى أَنْ يُغَيِّرُوا ثُمَّ لَا يُغَيِّرُوا، إِلَّا يُوشِكُ أَنْ يَعُمَّهُمُ اللهُ مِنْهُ بِعِقَابٍ.

"किसी भी क़ौम में अगर गुनाह किए जाएँ और क़ुदरत रखने के बावजूद लोग गुनाहगारों को न रोकें, तो क़रीब है कि ख़ुदा उन सबको अज़ाब में मुब्तला कर दे।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 4338)

एक और रिवायत के अलफ़ाज़ ये हैं—

والَّذِي نَفْسِي بِيدِه لتأْمُرُنَّ بالمَعْرُوفِ، ولتَنْهَوُنَّ عنِ المُنْكرِ، أو ليُوشِكنَّ الله يَبْعثُ عليكُم عِقابًا مِنْهُ، ثُمَّ تَدْعُونهُ، فلا يستجيبُ لكُم.

"उस ज़ात की क़सम, जिसके क़ब्ज़े में मेरी जान है। ज़रूर है कि तुम लोग नेकी का हुक्म दो और बुराई से रोको, वरना जल्द ही ख़ुदा तुम सब पर अज़ाब भेज देगा। फिर तुम ख़ुदा को पुकारोगे, मगर वह तुम्हें कोई जवाब न देगा।"

(सुनन अल-तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 2309)

हदीस में इस क़िस्म की जो हिदायतें नक़ल हुई हैं, वे असलन समाजी हिदायतें हैं, न कि सियासी हिदायतें यानी इनका मतलब यह नहीं है कि किसी हुक्मरान को 'ज़ालिम' क़रार देकर उसके खिलाफ़ शोर-शराबा करो और इंसाफ़ क़ायम करने के नाम पर उसे इक़्तिदार से बे-दख़ल करने की मुहिम चलाओ। इस क़िस्म की इस्लामी सियासत

महज़ मौजूदा ज़माने की सियासी पार्टियों की नक़ल है। इसका मज़कूरा इस्लामी हिदायत से कोई ताल्लुक़ नहीं। इन हिदायतों का मुख़ातब मुआशरे का हर फ़र्द है, न कि कोई सियासी निज़ाम।

किसी मुआशरे में हमेशा थोड़े आदमी होते हैं, जो शरारत करते हैं। अगर मुआशरा एक ज़िंदा मुआशरा हो, तो जब लोग देखते हैं कि एक पड़ोसी दूसरे पड़ोसी को सता रहा है; एक रिश्तेदार दूसरे रिश्तेदार को तकलीफ़ दे रहा है; एक साहिब-ए-मामला दूसरे साहिब-ए-मामला के हुक़ूक़ अदा नहीं करता, तो ऐसे मुआशरे में मज़लूम को ख़ुद अपने आस-पास ऐसे लोग मिल जाते हैं, जो उसकी हिमायत में खड़े हो जाएँ। वे ज़ालिम को मजबूर करते हैं कि वह अपनी शरारतों से बाज़ आए। ऐसे समाज में बुराइयाँ पैदा होती हैं, मगर वे वहीं-की-वहीं ख़त्म हो जाती हैं। इसके बरअक्स जब समाज के लोगों का हाल यह हो जाए कि वह अपने सामने बुराई के वाक़यात को ला-ताल्लुक़ी के अंदाज़ में (indifferently) देखने लगें, तो धीरे-धीरे इन ख़राबियों के नतीजे में ऐसे फ़ितने उभरते हैं, जो पूरे समाज को अपनी लपेट में ले लेते हैं।

माहौल का दबाव सबसे बड़ा दबाव है, यहाँ तक कि हुकूमत और अदालत से भी ज़्यादा। अगर आस-पास का माहौल बुराई को रोके और हक़ की हिमायत में खड़ा हो जाए, तो कभी बुराइयाँ फैल नहीं सकतीं। इसके बरअक्स जब समाज के अफ़राद बुराई को देखकर भी ख़ामोश रहें, तो इससे ब-यक-वक़्त दो ख़राबियाँ पैदा होती हैं— एक तरफ़ बुराई करने वाले की हौसला-अफज़ाई होती है और दूसरी तरफ़ मज़लूम के अंदर इंतक़ाम और बे-एतिमादी। ये दोनों चीज़ें वक़्त के साथ बढ़ती रहती हैं, यहाँ तक कि वह वक़्त आता है कि बुराइयाँ बढ़कर ख़ुद उन लोगों को नुकसान पहुँचाने लगती हैं, जो अपने को मामून समझकर बुराई के मामले में बेपरवाह हो गए गए थे।

तारुफ़-ए-जन्नत

क़ुरआन में एक आयत इन अलफ़ाज़ में आई है—

وَيُدْخِلُهُمُ الْجَنَّةَ عَرَّفَهَا لَهُمْ.

"और उन्हें जन्नत में दाख़िल करेगा, जिसकी उसने उन्हें पहचान करा दी है।" (क़ुरआन, 47:6)

क़ुरआन की इस आयत से मालूम होता है कि जन्नत का तारुफ़ इस दुनिया में करवा दिया गया है। यह तारुफ़ कहाँ है? वह क्या चीज़ है, जिसे जन्नत का तारुफ़ कहा जाए? मैं समझता हूँ कि मॉडर्न ज़माने के रेफरेंस में यह तारुफ़ इंडस्ट्रियल तहज़ीब है। इंडस्ट्रियल तहज़ीब, जो साइंस की तहक़ीक़ात पर मबनी है, इसने यह किया है कि फ़ितरत में छिपे हुए ख़ज़ाने को दरियाफ़्त किया और उसे इंसान के लिए देखने और इस्तेमाल करने के क़ाबिल बना दिया।।

फ़ितरत की दुनिया में हमेशा से अल्लाह की बहुत-सी नेमतें छुपी हुई थीं, लेकिन इंसान इनके बारे में कोई इल्म न रखता था। मसलन—मोटरकार और हवाई जहाज़। इसी तरह दूसरी तमाम साइंसी दौर की चीज़ें हैं। इंसान ने फ़ितरत में छुपी हुई इन नेमतों को दरियाफ़्त किया और उसे क़ाबिल-ए-इस्तेमाल बनाया। ये तमाम साइंसी दरियाफ़्तें मॉडर्न ज़माने के इंसानों के सामने बहुत ही महदूद सतह पर जन्नत का तारुफ़ी झलक पेश करती हैं।

जन्नत का रियलाइज़ेशन

दूध पत्थरी (ज़िला बडगाम, कश्मीर) क़ुदरती ख़ूबसूरती से माला-माल एक मक़ाम है, जो श्रीनगर से 40 किलोमीटर की दूरी पर वाक़े है। इसकी

ख़ूबसूरती की बिना पर टूरिस्ट इसे स्विट्ज़रलैंड से ताबीर करते हैं। एक मर्तबा मुझे यह मक़ाम देखने का मौक़ा मिला। दूध पत्थरी वाक़ई इंतिहाई ख़ूबसूरत मक़ाम है। इस जगह को देखते हुए मुझे ऐसा लगा, जैसे मैं जन्नत की पुर-अम्न और पुर-सुकून दुनिया में पहुँच गई हूँ, जहाँ ग़म और सफ़रिंग से ख़ाली एक ख़ुशियों भरी अबदी ज़िंदगी होगी। एक सय्याह ने नेचर पर तब्सिरा करते हुए यह बा-मअनी जुमला कहा है—

नेचर में ज़िंदगी के लिए हर चीज़ मौजूद है।

Everything necessary for life is present in nature.

मैंने इस तब्सिरे को पढ़ा, तो मुझे लगा कि एक मुतलाशी इंसान ने यह बयान अपने फ़ितरी जज़्बे के तहत जन्नत के लिए दिया है। फिर मैं सोचने लगी कि यही ज़िंदगी 'असल ज़िंदगी' है, लेकिन हम क्यों समझ नहीं पाते? इसलिए कि अल्लाह ने मौजूदा दुनिया में जन्नत के ऊपर इम्तिहानी मक़सद के तहत एक पर्दा डाल दिया है। यहाँ मुख़्तलिफ़ क़िस्म के मसाइल हैं— सफ़रिंग, ग़म, बीमारी, बुढ़ापा, एक्सीडेंट, बुरे लोग और डिस्ट्रैक्शन वग़ैरह। इसलिए इंसान हमेशा दुनिया के मसाइल में फँसा रहता है, यहाँ तक कि वह अबदी जन्नत को दरियाफ़्त किए बग़ैर इस दुनिया से चला जाता है। हालाँकि अगर वह यहाँ उस अबदी जन्नत को दरियाफ़्त कर लेता, तो दुनिया के मसाइल उसे महसूस ही नहीं होते।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब अपनी ज़िंदगी के आख़िरी साल बीमार रहे, लेकिन वे कभी किसी बात की शिकायत नहीं करते थे। हम लोग जब पूछते थे कि आपको कोई तकलीफ़ है? तब वे कहते कि नहीं, सब ठीक है। चेहरे से भी तकलीफ़ का इज़हार नहीं होता था। अब मैं सोचती हूँ, तो समझ में आता है कि मौलाना साहब ख़ुदा और जन्नत में जीते थे, इसलिए दुनिया की मुसीबतें उन पर कोई

असर नहीं डालती थीं। इसी तरह हमें भी अपने आपको दुनिया के आरज़ी मसाइल (temporary problems) से ऊपर उठकर जीने वाला बनाना है।

—डॉक्टर फ़रीदा ख़ानम

हिदायत का क़ानून-ए-फ़ितरत

फ़ितरत का एक क़ानून क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

وَاللهُ يَهْدِي مَنْ يَشَاءُ إِلَى صِرَاطٍ مُسْتَقِيمٍ.

"अल्लाह जिसे चाहता है, सीधी राह दिखा देता है।"

(क़ुरआन, 2:213)

जो शख़्स ख़ुदा के क़ानून-ए-फ़ितरत को दरियाफ़्त करे और उसे अपनी ज़िंदगी में संजीदगी से अपना ले, वह सिरात-ए-मुस्तक़ीम के लिए अल्लाह की मदद का मुस्तहिक़ बन जाता है। इसके बाद कोई चीज़ नहीं होती, जो उसे सिरात-ए-मुस्तक़ीम से हटा दे और सिरात-ए-मुस्तक़ीम पर क़ायम रहना इस दुनिया में कामयाबी की यक़ीनी ज़मानत है।

यही वह मक़ाम है, जिसे हदीस में तमसील की ज़बान में इस तरह बयान किया गया है—

"मेरा बंदा किसी चीज़ के ज़रिए मेरा क़ुर्ब हासिल नहीं करता, जो मुझे उन आमाल से ज़्यादा महबूब हो, जो मैंने उस पर फ़र्ज़ किए हैं। फिर मेरा बंदा नवाफ़िल के ज़रिए मेरा क़ुर्ब हासिल करता रहता है, यहाँ तक कि मैं उससे मुहब्बत करने लगता हूँ; यहाँ तक कि मैं उसका कान बन जाता हूँ, जिससे वह सुनता

है और उसकी आँख बन जाता हूँ, जिससे वह देखता है और उसका हाथ हो जाता हूँ, जिससे वह पकड़ता है (كُنْتُ سَمْعَهُ الَّذِي يَسْمَعُ بِهِ، وَبَصَرَهُ الَّذِي يُبْصِرُ بِهِ، وَيَدَهُ الَّتِي يَبْطِشُ بِهَا) और उसका पाँव बन जाता हूँ, जिससे वह चलता है। अगर वह मुझसे सवाल करे, तो मैं उसे ज़रूर अता करता हूँ और अगर वह मुझसे पनाह माँगे, तो मैं पनाह देता हूँ।"

(सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6502)

सिरात-ए-मुस्तक़ीम क्या है? सिरात-ए-मुस्तक़ीम यह है कि अल्लाह के मुक़र्रर किए हुए तरीक़े पर चलते हुए अपना सफ़र तय करना। यह रास्ता हमेशा वह होता है, जो ख़ुदग़र्ज़ी से पाक होता है, जो तास्सुब से पाक होता है, ग़ुलू और शिद्दत-पसंदी से पाक होता है, जो नेगेटिव सोच से पाक होता है। इससे आदमी इस क़ाबिल बन जाता है कि वह अपने आपको 'नो प्रॉब्लम पर्सन' बना ले और मारिफ़त-ए-ख़ुदावंदी में जीने लगे। ऐसा उस वक़्त होता है, जबकि वह किब्र की नफ़्सियात से पूरी तरह पाक हो। उसके अंदर ख़ुदा के लिए भी पाक जज़्बात हों, इंसानों के लिए भी पाक जज़्बात हों। इस सोच को दूसरे अलफ़ाज़ में मबनी-बर-तज़्किया सोच कह सकते हैं।

तस्बीह-ए-फ़ातिमा का सबक़

हज़रत फ़ातिमा रज़ियल्लाहु अन्हा रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की सबसे छोटी साहिब-ज़ादी हैं। हिजरत से क़ब्ल 605 ई. में वे हज़रत ख़दीजा रज़ियल्लाहु अन्हा से पैदा हुईं। रसूलुल्लाह की वफ़ात के 6 महीने बाद 632 ई. में मदीना में उनका इंतक़ाल हुआ। उनका निकाह हज़रत अली बिन अबी तालिब रज़ियल्लाहु अन्हु से

हुआ। उस वक़्त हज़रत फ़ातिमा की उम्र 18 साल थी। मशहूर रिवायात के मुताबिक़, हज़रत फ़ातिमा से चार बच्चे पैदा हुए— हसन, हुसैन, ज़ैनब, उम-ए-कुलसूम रज़ियल्लाहु अन्हुम। हज़रत फ़ातिमा से 18 हदीसें मरवी हैं। हज़रत फ़ातिमा की ज़िंदगी मेहनत और मशक़्क़त की ज़िंदगी थी। चुनाँचे एक मर्तबा उन्होंने रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से दरख़्वास्त की कि मुझे एक ख़ादिम दीजिए। रसूलुल्लाह ने फ़रमाया कि क्या मैं तुम दोनों को इससे ज़्यादा अच्छी चीज़ न बताऊँ (أَلَا أَدُلُّكُمَا عَلَى مَا هُوَ خَيْرٌ لَكُمَا مِنْ خَادِمٍ)। हज़रत फ़ातिमा ने कहा, "हाँ।" चुनाँचे आपने हज़रत फ़ातिमा को वह मशहूर तस्बीह बताई, जो 'तस्बीह-ए-फ़ातिमा' के नाम से मशहूर है (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 6318)। इस तस्बीह पर न सिर्फ़ हज़रत फ़ातिमा ने सारी उम्र अमल किया, बल्कि वह आम तौर पर उम्मत की औरतों और मर्दों का एक मुस्तक़िल मामूल बन गया।

इस तरह हज़रत फ़ातिमा के ज़रिए उम्मत में एक अहम मिसाल क़ायम हुई। यह मिसाल कि बाप की तरफ़ से अपनी बेटी के लिए अच्छा तोहफ़ा क्या है और यह कि बेटी किस तरह ख़ुश-दिली के साथ इस तोहफ़े को क़ुबूल कर ले। यह वाक़या हमेशा के लिए एक आला मिसाल की हैसियत रखता है। बेटी ने अपने बाप से तोहफ़ा माँगा था, लेकिन बाप ने अपनी बेटी को रुहानी तोहफ़ा दिया। दूसरी तरफ़ बेटी ने अपनी माँग पर इसरार नहीं किया, बल्कि बाप की तरफ़ से जो कुछ दिया गया था, उसे ख़ुश-दिली के साथ क़ुबूल कर लिया। ख़ुसूसी तौर पर इस वाक़ये में एक औरत के लिए यह सबक़ है कि इस दुनिया में उसका सबसे बड़ा सरमाया दुआ है, न कि माद्दी अतियात। हज़रत फ़ातिमा के ज़रिए यह मिसाल क़ायम हुई कि इंसान को हर हाल में दुआ में जीना चाहिए, न कि शिकायात और मुतालिबात में।

इस्लाम में औरत

(औरत निस्फ़-ए-इंसानियत)

पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम की अहलिया हज़रत आयशा सिद्दीक़ा से एक मसला पूछा गया। उन्होंने बताया कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम से इसी क़िस्म का एक सवाल किया गया था। आपने इस मसले का जवाब औरत और मर्द के ताल्लुक़ से एक अहम इस्लामी उसूल यह बयान किया—

إِنَّمَا النِّسَاءُ شَقَائِقُ الرِّجَال.

"औरतें बिला-शुब्हा मर्दों की शक़ीक़ हैं।"

(सुनन अबू दाऊद, हदीस नंबर 236; सुनन तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 113)

शक़ीक़ या शक़ीका अरबी ज़बान में किसी चीज़ के दर्मियान से फटे हुए दो बराबर-बराबर हिस्से को कहते हैं। इसी से दर्द-ए-शक़ीक़ा बोला जाता है यानी वह दर्द, जो सिर के आधे हिस्से में हो। ऊपर की रिवायत में इसी मफ़हूम में औरत को मर्द का शक़ीक़ा कहा गया है। यह औरत की हैसियत की निहायत सही ताबीर है। इस्लाम के मुताबिक़, औरत और मर्द दोनों एक कुल के दो बराबर-बराबर अज्ज़ा हैं, इस कुल का आधा औरत है और उसका आधा मर्द।

क़ाज़ी अबू बकर इब्न अल-अरबी अल-मालिकी (वफ़ात : 543 हिज्री) ने इस हदीस की शरह में ये अलफ़ाज़ लिखे हैं—

أَنَّ الخِلقَة فيهم واحدةٌ، والحكمُ فيهم بالشّريعة سواء.

"इन दोनों की तख़्लीक़ एक है, उनके बारे में शरीयत का हुक्म बराबर है।"

(अल-मसालिक फ़ी शरह मुवत्ता इमाम मालिक, जिल्द 2, सफ़्हा 216)

बदरुद्दीन अल-ऐनी (वफ़ात : 855 हिज्री) ने इसकी शरह इन अलफ़ाज़ में की है—

وَالْمَعْنَى أَن النِّسَاء نَظَائِر الرجل وأمثالهم فِي الْأَخْلَاق والطباع كأنهن شُقِقْنَ مِنْهُمْ.

(उम्दा अल-क़ारी शरह सहीह अल-बुख़ारी, जिल्द 3, सफ़्हा 235)

इसका मतलब यह है कि औरतें मर्दों के हम-रुतबा और उनकी मानिंद हैं, अपने अख़्लाक़ और पैदाइश के एतिबार से, गोया वे उनसे टुकड़े होकर अलग हुई हों।

दूसरे अलफ़ाज़ में, औरत और मर्द एक-दूसरे को मुकम्मल करते हैं। इस एतिबार से यह बात ऐन दुरुस्त होगी कि औरत को निस्फ़-ए-इंसानियत का लक़ब दिया जाए।

क्या इस्लाम में औरतों को मारने की इजाज़त है?

यह ग़लत-फ़हमी सूरह अन-निसा की आयत नंबर 34 की वजह से पैदा होती है, मगर इस आयत में औरतों को मारने की इजाज़त नहीं है, यह तंबीह की ज़बान है। इसका सबूत यह है कि ख़ुद रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के घर ब-यक-वक़्त नौ ख़वातीन थीं। सवाल यह है कि रसूलुल्लाह ने इन ख़वातीन को मारा? यह साबित है कि इन ख़वातीन से रसूलुल्लाह को कुछ उमूर में इख़्तिलाफ़ हुआ, लेकिन रसूलुल्लाह ने कभी किसी ख़ातून को कभी नहीं मारा। इसके बरअक्स रसूलुल्लाह बराबर अपने असहाब को इस क़िस्म की नसीहत करते थे—

إِنَّ أَكْمَلَ الْمُؤْمِنِينَ إِيمَانًا أَحْسَنُهُمْ خُلُقًا، وَأَلْطَفُهُمْ بِأَهْلِهِ.

“बेशक ईमान के एतिबार से मुकम्मल मोमिन वह है, जो उनमें अख़्लाक़ में सबसे अच्छा हो और अपनी बीवी के साथ सबसे नरम हो।” (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 24677)

क़व्वाम का मतलब क्या है?

क़ुरआन की सूरह अन-निसा की आयत में आया है कि मर्द औरतों के ऊपर क़व्वाम है—

الرِّجَالُ قَوَّامُونَ عَلَى النِّسَاءِ.

“मर्द औरतों के ऊपर क़व्वाम हैं।” (क़ुरआन, 4:34)

क़व्वाम के मअनी अरबी ज़बान में निगराँ और मुंतज़म के हैं। ‘मर्द क़व्वाम हैं’ का मतलब यह नहीं कि मर्द अफ़ज़ल मख़्लूक़ है और इसके मुक़ाबले में औरत ग़ैर-अफ़ज़ल मख़्लूक़। इसका मतलब सिर्फ़ यह है कि ख़ानदानी मामलात के इंतज़ाम या बंदोबस्त के लिए ख़ालिक़ ने यह फ़ितरी उसूल मुक़र्रर किया है कि घर के दाख़िली मजमूए में मर्द मुंतज़िम की ज़िम्मेदारी को सँभाल ले, ताकि ख़ानदान का निज़ाम इसी तरह दुरुस्त तौर पर चल सके, जैसे बाक़ी कायनात का निज़ाम इसी उसूल-ए-तंज़ीम को इख़्तियार करके दुरुस्त तौर पर चल रहा है। आज के अलफ़ाज़ में क़व्वाम का मतलब बयान किया जाए, तो वह शब्द ‘बॉस’ (boss) है। हर इदारे और हर दफ़्तर को मुनज़्ज़म तौर पर चलाने के लिए एक बॉस होता है। कारकुन ख़वातीन अपने दफ़्तरों में बॉस को पूरी तरह तस्लीम करती हैं। इस्लाम ने घर के लिए मर्द को बॉस की हैसियत दी है—

Bossism is a universal principle, and the home is no exception.

यह इंतिज़ामी उमूर का मामला है। इस एतिबार से यह ज़िम्मेदारी की बात है, न कि अफ़ज़लियत का मामला यानी घरेलू उमूर में मर्द पर ज़्यादा ज़िम्मेदारी है। हर मामले की तरह इस मामले में भी इस्तिसना है।

कोई औरत अगर अपने घर में मर्द से ज़्यादा समझदार हो, तो वह भी अपने घर में क़व्वाम की ज़िम्मेदारी निभा सकती है।

क़ुरआन समझने की कुंजी

क़ुरआन को समझने का उसूल क्या है? इसका एक साफ़ उसूल होना चाहिए। यह भी ज़रूरी है कि यह उसूल खुद क़ुरआन से सीधे तौर से तौर पर ब-ज़रिया नस (text) से मालूम होना चाहिए, न कि किसी क़ियासी या इस्तिंबाती (inferred) नुक्ते से यानी यह उसूल ऐसा होना चाहिए, जो क़ुरआन में वाज़ेह दलील में मौजूद हो। इससे कम दर्जे का कोई दलील इस मामले में क़ाबिल-ए-क़ुबूल नहीं। इस सिलसिले में दो खुली-खुली आयतें मौजूद हैं, जो यह बताती हैं कि क़ुरआन को समझने का उसूल क्या होना चाहिए और किस उसूल की रोशनी में हमें क़ुरआन को समझने की कोशिश करनी चाहिए। क़ुरआन के मुताबिक़, वही उसूल फ़हम-ए-क़ुरआन के लिए बुनियादी उसूल हो सकते हैं, जो सबसे पहले क़ुरआन से सीधे तौर से मालूम हों।

कुछ लोगों का यह ख़्याल है कि नज़्म-ए-क़ुरआन फ़हम-ए-क़ुरआन की कलीद है, लेकिन इसके लिए सीधे तौर से कोई दलील मौजूद नहीं। यह कि 'नज़्म-ए-क़ुरआन का उसूल फ़हम-ए-क़ुरआन की कुंजी है' ज़्यादा से ज़्यादा एक नुक्ता है, वह हरगिज़ फ़हम-ए-क़ुरआन की कलीद नहीं। क़ुरआन के मुताले से मालूम होता है कि क़ुरआन को समझने के लिए बुनियादी उसूल तदब्बुर है। इस आयत के अलफ़ाज़ ये हैं—

كِتَابٌ أَنْزَلْنَاهُ إِلَيْكَ مُبَارَكٌ لِيَدَّبَّرُوا آيَاتِهِ وَلِيَتَذَكَّرَ أُولُو الْأَلْبَابِ.

"यह एक बा-बरकत किताब है, जो हमने तुम्हारी तरफ़ उतारी है, ताकि लोग इसकी आयतों पर ग़ौर करें, जिससे अक़्ल वाले इससे नसीहत हासिल करें।" (क़ुरआन, 38:29)

क़ुरआन में तदब्बुर का मतलब क्या है? इसका मतलब है क़ुरआन की साबित-शुदा दलील की रोशनी में क़ुरआन पर ग़ौर करना।

इसी तरह क़ुरआन के मुताले से यह मालूम होता है कि क़ुरआन को समझने के लिए दूसरा बुनियादी उसूल तक़्वा है यानी अल्लाह की पकड़ का ख़ौफ, जैसा कि क़ुरआन में आया है—

وَاتَّقُوا اللهَ وَيُعَلِّمُكُمُ اللهُ.

"और अल्लाह का तक़्वा इख़्तियार करो, अल्लाह तुम्हें सिखाएगा।" (क़ुरआन, 2:282)

अगर क़ुरआन का मुताला करने के लिए तदब्बुर और तक़्वे का तरीक़ा इख़्तियार किया जाए, तो क़ुरआन अपने क़ारी के अंदर फ़ुर्क़ान की सिफ़त पैदा करता है। वह क़ारी को इस क़ाबिल बनाता है कि वह किसी चीज़ के दो पहलुओं के दरमियान फ़र्क़ कर सके। दूसरे अलफ़ाज़ में, किसी इंसान के लिए क़ुरआन के गहरे फ़हम का हुसूल सिर्फ़ तक़्वा प्लस तदब्बुर के ज़रिए मुमकिन है।

फ्रीडम और सरेंडर के दरमियान

क़ुरआन की एक आयत इन अलफ़ाज़ में आई है—

وَلَقَدْ ذَرَأْنَا لِجَهَنَّمَ كَثِيرًا مِنَ الْجِنِّ وَالْإِنْسِ لَهُمْ قُلُوبٌ لَا يَفْقَهُونَ بِهَا وَلَهُمْ أَعْيُنٌ لَا يُبْصِرُونَ بِهَا وَلَهُمْ آذَانٌ لَا يَسْمَعُونَ بِهَا أُولَئِكَ كَالْأَنْعَامِ بَلْ هُمْ أَضَلُّ أُولَئِكَ هُمُ الْغَافِلُونَ.

"और हमने जिन्नात और इंसान में से बहुतों को दोज़ख़ के लिए पैदा किया है। उनके दिल हैं, जिनसे वे समझते नहीं; उनकी आँखें हैं, जिनसे वे देखते नहीं; उनके कान हैं, जिनसे वे सुनते नहीं। वे ऐसे हैं, जैसे चौपाए, बल्कि उनसे भी ज़्यादा बे-राह। यही लोग हैं ग़ाफ़िल।" (क़ुरआन, 7:179)

इस आयत में ग़ौर करने से मालूम होता है कि अल्लाह ने इंसान को एक ख़ास मख़्लूक़ के तौर पर पैदा किया। इंसान एक ऐसी मखलूक़ है, जिसका कमाल यह है कि वह टोटल फ्रीडम के बावजूद टोटल सरेंडर का सबूत दे। जो आज़ादी के बावजूद अपनी आज़ादी पर मुकम्मल कंट्रोल करते हुए उसका इस्तेमाल करे। यही वे लोग हैं, जो कामयाब हुए और उन्हें जन्नत में दाख़िला मिलेगा। वे जन्नत के वारिस होंगे। इसके बरअक्स जिन लोगों ने अपनी आज़ादी का ग़लत इस्तेमाल किया, वे इम्तिहान में फ़ेल हो गए। उनके लिए आख़िरत की मेयारी दुनिया में कोई हिस्सा नहीं।

यह वे लोग हैं, जिनके लिए अल्लाह ने हिदायत का रास्ता खोला, मगर वे दर्ज-ए-ज़ैल आयत का मिस्दाक़ बन गए—

الَّذِي آتَيْنَاهُ آيَاتِنَا فَانْسَلَخَ مِنْهَا فَأَتْبَعَهُ الشَّيْطَانُ فَكَانَ مِنَ الْغَاوِينَ- وَلَوْ شِئْنَا لَرَفَعْنَاهُ بِهَا وَلَكِنَّهُ أَخْلَدَ إِلَى الْأَرْضِ وَاتَّبَعَ هَوَاهُ فَمَثَلُهُ كَمَثَلِ الْكَلْبِ إِنْ تَحْمِلْ عَلَيْهِ يَلْهَثْ أَوْ تَتْرُكْهُ يَلْهَثْ ذَلِكَ مَثَلُ الْقَوْمِ الَّذِينَ كَذَّبُوا بِآيَاتِنَا.

"जिसे हमने अपनी आयतें दी थीं, तो वह उनसे निकल भागा। फिर शैतान उसके पीछे लग गया और वह गुमराहों में से हो गया और अगर हम चाहते, तो उसे उन आयतों के ज़रिए बुलंदी अता करते, लेकिन वह तो ज़मीन का हो गया और अपनी ख़्वाहिशों की पैरवी करने लगा। पस उसकी मिसाल

कुत्ते जैसी है कि अगर तू उसपर बोझ लादे, तब भी वह हाँफे और अगर उसे छोड़ दे, तब भी वह हाँफे। यह मिसाल उन लोगों की है, जिन्होंने हमारी निशानियों को झुठलाया।"

(क़ुरआन, 76-7:175)

ग़ुस्सा नहीं

एक रिवायत मुख़्तलिफ़ किताबों में आई है। मुसनद अहमद के अलफ़ाज़ ये हैं—

عَنْ رَجُلٍ مِنْ أَصْحَابِ النَّبِيِّ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ قَالَ: قَالَ رَجُلٌ: يَا رَسُولَ اللهِ، أَوْصِنِي؟ قَالَ:لَا تَغْضَبْ، قَالَ: قَالَ الرَّجُلُ:فَفَكَّرْتُ حِينَ قَالَ النَّبِيُّ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ مَا قَالَ، فَإِذَا الْغَضَبُ يَجْمَعُ الشَّرَّ كُلَّه.

"एक सहाबी-ए-रसूल रिवायत करते हैं कि एक आदमी ने कहा— 'ऐ अल्लाह के रसूल, मुझे वसीयत कीजिए।' आपने कहा— 'ग़ुस्सा मत करो।' उस आदमी ने कहा कि मैंने ग़ौर किया, तो मालूम हुआ कि ग़ुस्सा सभी बुराइयों की जड़ है।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 23171)

अब सवाल यह है कि ग़ुस्सा बुराइयों की जड़ क्यों है? असल यह है कि ग़ुस्सा जब किसी के ऊपर आता है, तो वह मुकम्मल तौर पर नेगेटिव (negative) ज़ेहन का आदमी बन जाता है। वह नेगेटिव सोच में मुब्तला हो जाता है और नेगेटिव सोच बिला-शुब्हा तमाम बुराइयों की जड़ है। ग़ुस्सा वक़्ती तौर पर आदमी के अंदर से सही और ग़लत के दरमियान फ़र्क़ की सलाहियत को बे-असर कर देता है। उस वक़्त मुसबत (positive) जज़्बात दब जाते हैं और नेगेटिव जज़्बात

उभर आते हैं। ग़ुस्सा आदमी के अंदर इंतक़ाम के जज़्बात भड़का देता है। दोनों फ़रीक़ के अंदर एक-दूसरे के ख़िलाफ़ मुख़ालिफ़ाना जज़्बात उभर आते हैं।

जब आदमी मुख़ालिफ़ाना जज़्बे के साथ सामने वाले के ख़िलाफ़ कोई कार्रवाई करने पर उतर आता है, तो इसके बाद एक और बुराई पैदा होती है और वह है 'चेन रिएक्शन'। 'चेन रिएक्शन' ऐसी चीज़ है, जब वह पैदा हो जाए, तो फिर वह कभी ख़त्म नहीं होती।

इस 'चेन रिएक्शन' का नतीजा होता है कि दोनों एक-दूसरे के ख़िलाफ़ कार्रवाई शुरू कर देते हैं। एक कार्रवाई के बाद दूसरी कार्रवाई, फिर तीसरी। इस तरह एक न ख़त्म होने वाला सिलसिला शुरू हो जाता है। यह 'चेन रिएक्शन' बिला-शुब्हा दोनों की तबाही का सबब बन जाता है। ग़ुस्सा इब्तिदा में तो ग़ुस्सा है, लेकिन अपने इंतिहा पर पहुँचकर ग़ुस्सा तमाम बुराइयों का सबब बन जाता है।

हकीमाना कलाम

मौजूदा ज़माने में एक रिवाजी अंदाज़-ए-कलाम है, जिसे माहौल के असर से सब लोग बोलते हैं यानी पत्रकारिता की ज़बान, ह्यूमन राइट्स की ज़बान, प्रोटेस्ट की ज़बान वग़ैरह। आजकल मज़हबी और ग़ैर-मज़हबी दोनों क़िस्म के अफ़राद यही बोली बोलते हैं। ये बोलियाँ मौजूदा माहौल में चली हुई बोलियाँ हैं। इन्हें बोलने के लिए किसी मज़ीद तैयारी की ज़रूरत नहीं। माहौल के ज़ेरे-असर लोग अपने आप यह बोली सीख लेते हैं और इसे दोहराते रहते हैं। यही वजह है कि मज़हबी और ग़ैर-मज़हबी सब इसी पैटर्न को इख़्तियार किए हुए हैं। इस पैटर्न को एक लफ़्ज़ में 'एहतिजाजी अंदाज़' कह सकते हैं।

इसके बरअक्स दूसरी बोली वह है, जो बा-उसूल इंसान की बोली हो। इस क़िस्म की बोली बोलने के लिए ज़रूरत होती है कि इसके लिए बाक़ायदा तौर पर बतौर मौज़ू तैयारी की जाए। इसके तमाम पहलुओं का जायज़ा लिया जाए। चूँकि लोग बोलने से पहले इसके लिए ज़रूरी तैयारी के आदी नहीं हैं, इसलिए यह बोली उनके दरमियान राइज न हो सकी। बा-उसूल बोली वह है, जब बोलने वाला इंसान पहले ख़ूब अच्छी तरह सोचे, वह उसके लिए ज़रूरी मवाद (data) इकट्ठा करे। वह यह सोचे कि उसे अपने हर लफ़्ज़ का अल्लाह रब्बुल आलमीन के यहाँ हिसाब देना है। बोलने से पहले अपनी बात को अक़्ल के उसूल पर जाँचे कि वह जो कुछ बोल रहा है, वह वाक़ई में हकीमाना कलाम के मेयार पर उतरता है या नहीं। उसका कलाम आख़िरत-रुख़ी कलाम हो, न कि दुनिया-रुख़ी कलाम। यही वह अंदाज़-ए-कलाम है, जिसके बारे में क़ुरआन में आया है—

لَا خَيْرَ فِي كَثِيرٍ مِنْ نَجْوَاهُمْ إِلَّا مَنْ أَمَرَ بِصَدَقَةٍ أَوْ مَعْرُوفٍ أَوْ إِصْلَاحٍ بَيْنَ النَّاسِ وَمَنْ يَفْعَلْ ذَلِكَ ابْتِغَاءَ مَرْضَاتِ اللَّهِ فَسَوْفَ نُؤْتِيهِ أَجْرًا عَظِيمًا.

“उनकी अकसर सरगोशियों में कोई भलाई नहीं। भलाई वाली सरगोशी सिर्फ़ उसकी है, जो सदक़ा करने को कहे या किसी नेक काम के लिए कहे या लोगों में सुलह कराने के लिए कहे। जो शख़्स अल्लाह की ख़ुशी के लिए ऐसा करे, तो हम उसे बड़ा अज्र अता करेंगे। इस आयत में ‘नज्वा’ का मतलब सरगोशी नहीं है, बल्कि लोगों के दरमियान जो बातें होती हैं, वही बातें हैं।” (क़ुरआन, 4:114)

हौसला न हारो

क़ुरआन की एक तालीम यह है कि आदमी ईमान पर क़ायम रहने की कोशिश में बे-हौसला न हो, वह सख़्त हालात में हिम्मत न हारे وَلَا تَهِنُوا (3:139) यानी हिम्मत न हारो (Do not lose heart), साबित-क़दमी दिखाओ। क़ुरआन की यह आयत ख़ुसूसी तौर पर जिहाद के तहत आयत नहीं है, बल्कि वह बा-ईमान ज़िंदगी की जद्दोजहद के बारे में है। इसका मतलब यह है कि ज़िंदगी की जद्दोजहद में मोमिन पर जब वह वक़्त आता है, जबकि ना-मुवाफ़िक़ हालात की बिना पर उसके अंदर बे-हौसलगी आने लगती है, उस वक़्त मोमिन को चाहिए कि वह इसे फ़ितरत का हिस्सा समझे और अपने आपको मायूसी से बचाए।

ऐसे मौक़े पर अपने आपको पस्त-हिम्मती से बचाना कैसे होता है? इसका तरीक़ा यह है कि मोमिन पर जो हालात गुज़र रहे हैं, वह हर हाल में अपने आपको इस यक़ीन पर क़ायम रखे कि जो कुछ हो रहा है, वह अल्लाह की मर्ज़ी से हो रहा है। वह यक़ीन रखे कि अल्लाह हालात को देख रहा है और यह कि अल्लाह ने यह सख़्त हालात दिए हैं, वही इन हालात से मुक़ाबला करने की ताक़त भी देगा और हालात को दर्जा ब-दर्जा मुवाफ़िक़ करेगा।

बे-हौसलगी का मामला हालात की तरफ़ से पैदा होता है। ये हालात हर ज़माने और हर जगह पेश आते हैं। इससे किसी को इस्तिसना (exception) नहीं, हत्ता कि पैग़ंबर के लिए भी नहीं। अलबत्ता इंसान के अंदर अगर फ़ितरी कमज़ोरी है, तो ऐसे मौक़े पर उसके लिए अल्लाह की ख़ुसूसी मदद आएगी।

इस सिलसिले की एक रहनुमा हदीस-ए-रसूल यह है—

الْمُؤْمِنُ الْقَوِيُّ، خَيْرٌ وَأَحَبُّ إِلَى اللهِ مِنَ الْمُؤْمِنِ الضَّعِيفِ، وَفِي كُلٍّ خَيْرٌ احْرِصْ عَلَى مَا يَنْفَعُكَ، وَاسْتَعِنْ بِاللهِ وَلَا تَعْجَزْ، وَإِنْ أَصَابَكَ شَيْءٌ، فَلَا تَقُلْ لَوْ أَنِّي فَعَلْتُ كَانَ كَذَا وَكَذَا، وَلَكِنْ قُلْ قَدَرُ اللهِ وَمَا شَاءَ فَعَلَ، فَإِنَّ لَوْ تَفْتَحُ عَمَلَ الشَّيْطَانِ.

“ताक़तवर मोमिन अल्लाह के नज़दीक कमज़ोर मोमिन के मुक़ाबले में बेहतर और ज़्यादा महबूब है और हर एक के लिए ख़ैर है। उस चीज़ की हिर्स करो, जो तुम्हें नफ़ा दे और अल्लाह से मदद माँगो और हिम्मत न हारो। अगर तुम्हें कोई नुक़सान पहुँचे तो यह न कहो कि अगर मैं ऐसा करता, तो ऐसा होता, बल्कि यूँ कहो कि यह अल्लाह की तक़दीर है और जो उसने चाहा, वही हुआ। यक़ीनन ‘अगर और मगर’ शैतान को काम करने का मौक़ा फ़राहम करना है।”

(सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 2664)

आइडियोलॉजी की ताक़त

सीरत की किताबों से मालूम होता है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने क़ुरैश से कहा कि एक कलिमा यानी ‘ला-इलाहा इल्लल्लाह’ का इक़रार कर लो, सारी दुनिया तुम्हारी हो जाएगी। रिवायत के अलफ़ाज़ ये हैं—

كَلِمَةٌ وَاحِدَةٌ تُعْطُونِيهَا تَمْلِكُونَ بِهَا الْعَرَبَ، وَتَدِينُ لَكُمْ بِهَا الْعَجَمُ. قَالَ: فَقَالَ أَبُو جَهْلٍ: نَعَمْ وَأَبِيكَ، وَعَشْرَ كَلِمَاتٍ، قَالَ: تَقُولُونَ: لَا إِلَهَ إِلَّا اللهُ، وَتَخْلَعُونَ مَا تَعْبُدُونَ مِنْ دُونِهِ.

"एक कलिमा जो तुम क़ुबूल करोगे, उसके ज़रिए तुम अरब पर ग़लबा हासिल कर लोगे और अजम तुम्हारे आगे झुक जाएँगे। अबू जहल ने कहा— 'ज़रूर, तेरे बाप की क़सम और दस कलिमे।' आपने कहा— 'तुम कहो— ला-इलाहा इल्लल्लाह और अल्लाह के सिवा जिसकी इबादत करते हो, उसे छोड़ दो।" (सीरत इब्न-ए-हिशाम, जिल्द 1, सफ़्हा 417)

एक और रिवायत के अलफ़ाज़ ये हैं—

يَا أَيُّهَا النَّاسُ قُولُوا لا إِلَهَ إِلا اللهُ تُفْلِحُوا وَتَمْلِكُوا بِهَا الْعَرَبَ وَتَذِلَّ لَكُمُ الْعَجَمُ وَإِذَا آمَنْتُمْ كُنْتُمْ مُلُوكًا فِي الْجَنَّةِ.

"ऐ लोगो, ला-इलाहा इल्लल्लाह कहो, तुम कामयाब हो जाओगे, इसके ज़रिए तुम अरब पर ग़लबा हासिल कर लोगे और अजम तुम्हारे आगे झुक जाएँगे और जब तुम ईमान लाओगे, तो तुम जन्नत में बादशाह होगे।"
(अल-तबक़ात अल-कुबरा, इब्न साद, जिल्द 1, सफ़्हा 168)

इसी तरह एक हदीस में मुस्तक़बिल की पेशीनगोई के तौर पर आया है कि अहले-ईमान ला-इलाहा इल्लल्लाह कहेंगे और क़िले का दरवाज़ा टूट जाएगा। (सही मुस्लिम, हदीस नंबर 2920)

इसका मतलब क्या है? इसका मतलब सियासी ग़लबा नहीं है, बल्कि नज़रियाती ग़लबा है। इसकी मिसाल इस्लाम की बाद की तारीख़ है। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम और आपके असहाब की कोशिशों से अरब में एक फ़िक्री इंक़लाब जारी हुआ। मौजूदा ज़माने में जिस चीज़ को मॉडर्न सिविलाइज़ेशन कहा जाता है, वह इसी इंक़लाबी अमल की तकमील है। इसी फ़िक्री इंक़लाब का नतीजा है कि अब इक्कीसवीं सदी में 'कुफ़्र' अपनी नज़रियाती ताक़त खो चुका है और मुसलमानों के सियासी एंपायर के ख़ात्मे के बावजूद आज इस्लाम पूरी

दुनिया में सबसे ज़्यादा तेज़ी से फैलने वाला मज़हब बना हुआ है और इसकी इताअत करने वाले दुनिया में हर जगह मौजूद हैं।

एहसास-ए-गुनाह

फ़ुक़हा ने गुनाह को गुनाह-ए-कबीरा और गुनाह-ए-सग़ीरा में तक़्सीम किया है, लेकिन ज़्यादा सही बात यह है कि गुनाह की नौइयत एहसास-ए-गुनाह की निस्बत से मुक़र्रर होती है। जितनी बे-हिसी, उतना ही बड़ा ग़ुनाह। इस हक़ीक़त को तीन असहाब-ए-रसूल— अनस बिन मालिक, अबू सईद ख़ुदरी और उबादा बिन क़ुर्त ने रिवायत किया है—

إِنَّكُمْ تَعْمَلُونَ أَعْمَالًا هِيَ أَدَقُّ فِي أَعْيُنِكُمْ مِنَ الشَّعْرِ، إِنْ كُنَّا لَنَعُدُّهَا عَلَى عَهْدِ النَّبِيِّ صَلَّى اللهُ عَلَيْهِ وَسَلَّمَ مِنَ الْمُوبِقَاتِ.

"बेशक तुम कुछ बुरे काम करते हो, जो तुम्हारी नज़रों में बाल से भी ज़्यादा बारीक हैं, हालाँकि हम नबी सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ज़माने में इन्हें हलाकत में डाल देने वाले ग़ुनाहों में शुमार करते थे।"

(मुसनद अहमद, हदीस नंबर 12604, 10995, 20751)

इससे मालूम हुआ कि एहसास की नौइयत असल चीज़ है, जो गुनाह को कबीरा या सग़ीरा बनाती है। एहसास-ए-ख़ता की कमी या ज़्यादती एक गुनाह को गुनाह-ए-सग़ीरा या गुनाह-ए-कबीरा बना देती है। एहसास की शिद्दत से शऊर की गहराई पैदा होती है। इस एतिबार से इसका ताल्लुक़ मारिफ़त से है। जिस दर्जे की मारिफ़त, उसी दर्जे का एहसास-ए-ख़ता।

इस रिवायत में दरअसल ऐसे आदमी की हालत बयान की गई है, जिससे बशरी तक़ाज़े के तहत कोई ग़लती सर-ज़द हो जाए, मगर इसके

बाद वह ग़फ़लत या सरकशी का तरीक़ा इख़्तियार न करे, बल्कि वह शदीद क़िस्म की तौबा-ए-इनाबत (repentance) का सबूत दे। वह सुबह और शाम अल्लाह की पकड़ से डरता रहे। यही वह इंसान है, जिसे क़यामत में अल्लाह की ख़ुसूसी रहमत और मग़फ़िरत हासिल होगी।

इसके बरअक्स कुछ लोग वह हैं, जिनका ज़िक्र सहाबी-ए-रसूल अबू अय्यूब अंसारी ने इन अलफ़ाज़ में किया है—

إِنَّ الرَّجُلَ لِيَعْمَلُ الْحَسَنَةَ، يَتَّكِلُ عَلَيْهَا، وَيَعْمَلُ الْمُحَقَّرَاتِ حَتَّى يَأْتِيَ اللهَ وَقَدْ أَخْطَرَتْهُ، وَإِنَّ الرَّجُلَ لَيَعْمَلُ السَّيِّئَةَ فَيَفْرَقُ مِنْهَا حَتَّى يَأْتِيَ اللهَ آمِنًا.

"बेशक एक आदमी नेक काम करता है और उस पर वह पुर-एतिमाद होता है, मगर वह छोटे-छोटे गुनाह करता रहता है, चुनाँचे वह अल्लाह से इस हाल में मिलेगा कि गुनाह उसके लिए संगीन मसला बनकर मौजूद होंगे। (इसके बरअक्स) एक और आदमी है, जो गुनाह तो करता है, मगर बराबर वह इससे ख़ौफ़ज़दा रहता है, यहाँ तक कि वह अल्लाह से मामून होकर मिलेगा।

(शुअब अल-ईमान, अल-बैयहक़ी, हदीस नंबर 6880)

भोपाल के एक बुज़ुर्ग थे— शाह याक़ूब मुजद्दिदी (वफ़ात : 1970)। उनकी मजलिस में एक साहब आया करते थे, जो दाढ़ी नहीं रखते थे। शाह साहब उन्हें बार-बार ताकीद करते रहते थे। एक दिन उस शख़्स ने कहा कि हज़रत, अगर मैं दाढ़ी नहीं रखता, तो क्या हुआ, दाढ़ी इस्लाम में फ़र्ज़ तो नहीं, सिर्फ़ सुन्नत ही तो है। यह सुनकर शाह याक़ूब साहब ने कहा कि दाढ़ी बिला-शुब्हा सुन्नत है, लेकिन तुम्हारा लहजा कुफ़्र है।

उनकी बात का मतलब यह है कि 'बे-अमली' गुनाह है, मगर सरकशी उससे भी ज़्यादा बड़ा गुनाह है। बे-अमली के साथ अगर

शर्मिंदगी हो, तो शायद अल्लाह तआला ऐसे शख़्स को माफ़ कर दे, मगर जो शख़्स बे-अमली के साथ सरकशी दिखा रहा हो, वह क़ाबिल-ए-माफ़ी नहीं है। इस मिसाल से अंदाज़ा होता है कि किसी मामले में असल अहमियत शिद्दत-ए-एहसास की है, न कि ज़ाहिरी अमल की।

दुआ की हक़ीक़त

आम तौर पर यह समझा जाता है कि दुआ ज़बान से कुछ मुतय्यन अलफ़ाज़ की तकरार का नाम है यानी कुछ पुर-असरार नौइयत के मुक़र्रर अलफ़ाज़ है। उन्हें अगर सही तलफ़्फ़ुज़ के साथ इंसान दोहरा ले, तो ऐसी दुआ ज़रूर क़ुबूल होती है, मगर सही बात यह है कि दुआ 'स्पिरिट' का नाम है, जो दिल की गहराइयों के साथ बंदे की ज़बान से निकलती है।

दुआ की हक़ीक़त यह है कि यह रब्बुल आलमीन के सामने अपने इज्ज़ को रजिस्टर करना है, न कि रब के सामने चंद रटे हुए अलफ़ाज़ लिप सर्विस के तौर पर दोहराकर अपनी हाजत को माँगना। जब एक बंदा अपनी मोहताजगी की हालत को दरियाफ़्त करता है, तो वह अपने इज्ज़ को दरियाफ़्त करता है। दुआ यह है कि इंसान का दाख़िली एहसास लफ़्ज़ों में ढल जाए। ख़ुदा के मुक़ाबले में बेबसी की दरियाफ़्त इंसान के लिए उसके पूरे वजूद की ज़बान बन जाए। दरअसल यही स्पिरिट है, जो किसी दुआ को मक़्बूल दुआ बनाती है। दुआ के अलफ़ाज़ दुआ करने वाले इंसान की क़ल्बी कैफ़ियत को बताते हैं, वे महज ज़बान से कुछ कलिमात की अदायगी का मुज़ाहरा नहीं हैं।

ज़ुनूब की माफ़ी

क़ुरआन की एक आयत इन अलफ़ाज़ में आई है—

قُلْ يَاعِبَادِيَ الَّذِينَ أَسْرَفُوا عَلَى أَنْفُسِهِمْ لَا تَقْنَطُوا مِنْ رَحْمَةِ اللهِ إِنَّ اللهَ يَغْفِرُ الذُّنُوبَ جَمِيعًا إِنَّهُ هُوَ الْغَفُورُ الرَّحِيمُ.

"कहो कि ऐ मेरे बंदो! जिन्होंने अपनी जानों पर ज़्यादती की है, अल्लाह की रहमत से मायूस न हों। बेशक अल्लाह तमाम ग़ुनाहों को माफ़ कर देता है, वह बख़्शने वाला, मेहरबान है।"

(क़ुरआन, 39:53)

क़ुरआन की यह आयत एक अनोखी आयत है। इस आयत में 'जमी ज़ुनूब' (तमाम गुनाहों) की माफ़ी का ऐलान है, लेकिन क़ुरआन के आम उस्लूब के बरअक्स इस आयत में यह बात नहीं है कि अगर तुमने अपने गुनाहों की तौबा की, अल्लाह से मग़फ़िरत के तालिब बने, तो तुम्हारे लिए माफ़ी है। यह शर्त जो आम तौर पर क़ुरआन की आयतों में होती है, वह यहाँ ज़िक्र नहीं है। इसके बरअक्स यहाँ बताया गया है कि अगर तुम्हारे अंदर अल्लाह की रहमत पर कामिल दर्जे में यक़ीन पाया जाए, तो यह चीज़ अपने आप तुम्हारे तमाम गुनाहों की माफ़ी का सबब बन जाएगी। गोया इस आयत में बंदे को इस बात की तरग़ीब दी जा रही है कि वह अल्लाह की रहमत पर कामिल यक़ीन रखे, वह अल्लाह की रहमत से मायूस न हो। अगर बंदे की तरफ़ से ऐसा हुआ, तो इस आयत में बंदे के लिए यह बशारत है कि उसके 'जमी ज़ुनूब' अल्लाह की रहमत से माफ़ कर दिए जाएँगे और उसे जन्नत में दाख़िला मिल जाएगा।

आयत का उस्लूब बताता है कि मारिफ़त अगर आला दर्जे की हो और अल्लाह की रहमत पर जब कामिल यक़ीन पाया जाए, तो

यह बात ब-ज़ात-ए-ख़ुद इंसान के लिए मग़फ़िरत की सिफ़ारिश बन जाएगी। इंसान जब अपने इज्ज़ और अपनी अबदियत को शऊरी तौर पर दरियाफ़्त करता है, तो इससे वह सिफ़त पैदा होती है, जिसे क़ुरआन में 'ख़ौफ़' और 'उम्मीद' कहा गया है (21:90)। ईमान की ये दोनों सिफ़ात दरअसल मारिफ़त के नतीजे में पैदा होती हैं। मारिफ़त जितनी आला दर्जे की होगी, उतनी ही आला दर्जे की सिफ़ात आदमी के अंदर पैदा होंगी, वह दाख़िली शऊर का एक ख़ारिजी इज़हार होता है। ऐसे ही लोगों के लिए क़ुरआन की इस आयत में तमाम गुनाहों से बिला-शर्त माफ़ी का ऐलान है।

ज़ुहद एक अज़ीम अमल

सहाबी कौन है? सहाबी वह है, जिसने रसूलुल्लाह की सोहबत से इस्तिफ़ादा किया, जिसने रसूलुल्लाह से सीधे तौर से ख़ुदा के दीन को समझा। इन्हीं में से एक सहाबी का नाम अबू वाक़िद अल-लैसी (वफ़ात : 68 हिज्री) है। उनका एक क़ौल इन अलफ़ाज़ में आया है—

تَابَعْنَا الْأَعْمَالَ فِي الدُّنْيَا، فَلَمْ نَجِدْ شَيْئًا أَبْلَغَ فِي عَمَلِ الْآخِرَةِ مِنَ الزُّهْدِ فِي الدُّنْيَا.

"हमने दुनिया के आमाल में ग़ौर किया, तो हमने आख़िरत के लिए सबसे अच्छा अमल ज़ुहद फ़ी अद-दुनिया को पाया।"
(अल-ज़ुहद, वकीअ बिन अल-जर्राह, असर नंबर 3)

ज़ुहद का मतलब है दुनिया से बे-रग़बती। इससे मुराद किसी इंसान की यह सिफ़त है कि वह अपने मुताले और ग़ौर-ओ-फ़िक्र के ज़रिए ख़ुदा और आख़िरत में इतना ज़्यादा गुम हो जाए कि उसकी दिलचस्पियाँ तमामतर ख़ुदा और आख़िरत से वाबस्ता हो जाएँ। ख़ुदा

और आख़िरत से उसकी रग़बत इतनी ज़्यादा बढ़ जाए कि वह हर दूसरी चीज़ से बे-रग़बत हो जाए।

ऐसा इंसान एक मुख़्तलिफ़ इंसान बन जाता है। बज़ाहिर वह दूसरों की तरह इसी दुनिया में जीता है, लेकिन अपनी फ़िक्र के एतिबार से वह आख़िरत का मख़्लूक़ बन जाता है। वह सोचता है, तो अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए; वह जीता है, तो अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए; उसे किसी से मिलने का शौक़ होता है, तो वह अल्लाह रब्बुल आलमीन से मिलने का शौक़; उसे किसी चीज़ की रग़बत होती है, तो अल्लाह रब्बुल आलमीन की रहमत को पाने की चाहत होती है; उसका वह हाल हो जाता है, जिसके लिए क़ुरआन में ये अलफ़ाज़ आए हैं—

اَلَّذِينَ آمَنُوا أَشَدُّ حُبًّا لِلهِ.

"अल्लाह रब्बुल आलमीन के साथ हुब्ब-ए-शदीद का होना।" (क़ुरआन, 2:165)

ज़ुहद आला ईमान की सिफ़त है। ज़ुहद अल्लाह से क़ुरबत की पहचान है। ज़ुहद जन्नती इंसान का अख़्लाक़ है। ज़ाहिद इंसान क़ुरआन का मतलूब इंसान है। ज़ाहिद इंसान वह है, जिसे आख़िरत में वह दरजा मिलेगा, जिसे क़ुरआन में इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

فَأُولَئِكَ مَعَ الَّذِينَ أَنْعَمَ اللهُ عَلَيْهِمْ مِنَ النَّبِيِّينَ وَالصِّدِّيقِينَ وَالشُّهَدَاءِ وَالصَّالِحِينَ وَحَسُنَ أُولَئِكَ رَفِيقًا. (4:69)

तवाज़ो की सिफ़त

एक रिवायत के मुताबिक़ रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने फ़रमाया—

"अल्लाह ने मुझे यह पेशकश की कि तुम्हारे लिए मक्का की वादी को सोना बना दिया जाए। मैंने कहा कि ऐ मेरे रब! नहीं, बल्कि मैं चाहता हूँ कि एक दिन 'सैर' होकर खाऊँ और एक दिन भूखा रहूँ (وَلَكِنْ أَشْبَعُ يَوْمًا، وَأَجُوعُ يَوْمًا)। फिर जब मुझे भूख लगे, तो मैं तुझसे विनती करूँ और तुझे याद करूँ और जब मुझे नेमत हासिल हो, तो मैं तेरी हम्द करूँ और तेरा शुक्र अदा करूँ।" (मुसनद अहमद, हदीस नंबर 22190)

इंसानी ज़िंदगी पर ग़ौर किया जाए, तो मालूम होता है कि आदमी के पास जो कुछ भी है, वह उसके पास बतौर अतिया है यानी ख़ुदा ने दुनिया की तमाम चीज़ें उसे एकतरफ़ा तौर पर अता की हैं। अगर इंसान ऐसा सोचे, तो इससे आदमी के अंदर तवाज़ो (modesty) की नफ़्सियात पैदा होगी। वह डरेगा कि जिस ख़ुदा ने दिया है, वह उसे दोबारा उससे छीन न ले; मगर ग़ाफ़िल लोग इस अतिये को अपना ज़ाती हक समझ लेते हैं। उनका यही एहसास उन्हें ज़ालिम और मुतकब्बिर बना देता है।

इंसान को जो कुछ भी मिला हुआ है, वह उसके लिए अल्लाह का अतिया है। इसका एहसास आम तौर पर इंसान को उस वक़्त होता है, जबकि उससे वह चीज़ छिन जाए। हक़ीक़त यह है कि इंसान एक ऐसी ज़मीन पर है, जिसे वह फाड़ नहीं सकता; वह एक ऐसी कायनात में है, जहाँ सितारे और सय्यारे उसकी हर बरतरी की नफ़ी कर रहे हैं। यह ख़ुदा के मुक़ाबले में इंसान की हैसियत का एक तमसीली ऐलान है। इसका तक़ाज़ा है कि आदमी दुनिया में मुतकब्बिर बनकर न रहे। वह इज्ज़ और तवाज़ो का तरीक़ा इख़्तियार करे, न कि अक़ड़ और सरकशी का।

इस दुनिया में इंसान को तवाज़े (modest) से रहना चाहिए, ताकि वह इन तजुर्बात से सबक़ हासिल करने वाला बने।

महरूमी का एहसास इस दुनिया के अंदर तवाज़ो की सिफ़त पैदा करने का ज़रिया है और तवाज़ो (modesty) इंसान के अंदर आला इंसानी किरदार पैदा करता है। जो आदमी पूरी स्पिरिट के साथ तवाज़ो का तरीक़ा इख़्तियार करे, उसके अंदर यह आम मिज़ाज पैदा हो जाएगा कि वह ना-ख़ुशगवार बातों को बर्दाश्त करे, वह लोगों की क़ाबिल-ए-शिकायत बातों को नज़र-अंदाज़ करते हुए ज़िंदगी गुज़ारेगा, वह मुतवाज़े इंसान यानी 'मैन कट टू साइज' (man cut to size) बन जाएगा।

दूसरा क़ुरआन

एक मुसलमान ने अपने एक ग़ैर-मुस्लिम दोस्त को क़ुरआन का तर्जुमा पढ़ने के लिए दिया। ग़ैर-मुस्लिम ने बड़े शौक़ और एहतिराम के साथ क़ुरआन को लिया और उसे शुरू से आख़िर तक पढ़ डाला। अगली मुलाक़ात में उसने क़ुरआन का ज़िक्र किया हुआ नुस्ख़ा वापस करते हुए कहा— "अब दूसरा क़ुरआन दीजिए।"

मुसलमान ने समझा कि वे क़ुरआन का दूसरा नुस्ख़ा माँग रहे हैं। चुनाँचे वे दूसरा नुस्ख़ा लाए और उस ज़िक्र किए हुए ग़ैर-मुस्लिम के हाथ में रख दिया। ग़ैर-मुस्लिम ने उसे लेकर कुछ देर उलट-पुलटकर देखा। फिर कहा, "यह तो वही क़ुरआन है। मेरा मतलब यह था कि अब वह क़ुरआन दीजिए, जिस पर आप लोग अमल करते हैं।"

ग़ैर-मुस्लिम ने क़ुरआन में जो इस्लाम पढ़ा, वह उससे मुख़्तलिफ़ था, जो उसने मुसलमानों की अपनी ज़िंदगी में देखा था। ग़ैर-मुस्लिम ने समझा कि मुसलमानों के यहाँ शायद दो क़ुरआन हैं— एक वह, जिसे उसने अभी पढ़ा है; दूसरा वह, जो अभी उसे पढ़ने को नहीं मिला।

बज़ाहिर यह एक लतीफ़ा मालूम होता है, मगर अम्र (in fact) वाक़या यही है कि मुसलमानों के दो क़ुरआन हैं— एक वह, जो ख़ुदा की तरफ़ से उसके रसूल पर चौदह सौ साल पहले ब-ज़रिया वही उतरा था। दूसरा वह, जो उन्होंने ख़ुद लिख रखा है। इस दूसरे क़ुरआन का नाम क़ुरआन नहीं है और वे क़ुरआन की तशरीह-ओ-ताबीर (interpretation) है। मुसलमानों ने अपनी तशरीह-ओ-ताबीर से क़ुरआन के मुक़ाबले में एक और क़ुरआन लिख रखा है। इस दूसरे क़ुरआन में वह सब कुछ है, जिस पर आज के मुसलमान अमल कर रहे हैं।

क़ुरआन में 'इस्लाम' इताअत का नाम है, मगर मुसलमानों की अपनी तशरीह में इस्लाम फ़ख़्र की चीज़ बन गया है। क़ुरआन के मुताबिक़ नजात का दारोमदार अमल पर है, मगर मुसलमानों की तशरीह के मुताबिक़ नजात के लिए यह काफ़ी है कि आदमी अपने को मुसलमान कहता हो। क़ुरआन का इस्लाम यह है कि आदमी अपना जायज़ा (introspection) ले , मगर मुसलमानों की तशरीह के ख़ाने में इस्लाम इसका नाम हो गया है कि आदमी दुनिया के मुहासबे का झंडा उठाए हुए हो। क़ुरआन का इस्लाम सारे आलम का इस्लाम है, मगर मुसलमानों के ज़ेहनी ख़ाने में वह एक क़ौमी चीज़ बनकर रह गया है।

एक ख़त

मौलाना, आपकी तक़रीर (5 जुलाई, 2020) को सुनकर जो तास्सुर ज़हन में आया, वह लिख रहा हूँ। इस तक़रीर का उन्वान था— 'मार्क्स और मौदूदी का तक़ाबुल'। इस तक़रीर पर मेरा तास्सुर दर्ज-ए-ज़ैल है—

मेरे लिए यह एक नई बात है कि कार्ल मार्क्स ने अख़्लाक़ियात को हुकूमत का मौज़ू बना दिया, जबकि अख़्लाक़ियात इंसान की अपनी ज़ात का मौज़ू है। यह कार्ल मार्क्स की ग़लती थी। यही

ग़लती मौलाना मौदूदी साहब ने क़ुरआन की आयत أَقِيمُوا الدِّينَ (42:13) की तशरीह में की। उन्होंने أَقِيمُوا الدِّينَ (दीन को क़ायम रखो) को हुकूमत का मौज़ू बना दिया, जबकि वह इंसान की अपनी ज़ात का मौज़ू था। दोनों की ग़लती में बिलकुल यकसानियत पाई जाती है।

मौदूदी साहब की ग़लती ने أَقِيمُوا الدِّينَ को हुकूमत का मौज़ू बना दिया, तो इसके बाद यह हुआ कि मुआशरे में अगर कुछ बुराइयाँ और कमियाँ दिखाई देने लगें, तो ज़ेहन फ़ौरन इस तरफ़ गया कि इसकी वजह इस्लामी हुकूमत का न होना है। अगर इस्लामी हुकूमत होती, तो वह मुसलमानों को इस्लामी अहकामात की पैरवी करने पर मजबूर करती। इसके बरअक्स अगर हम أَقِيمُوا الدِّينَ को इंसान की अपनी ज़ात का मौज़ू बनाएँगे, तो इसका नतीजा यह होगा कि मुआशरे में जब कभी बुराइयाँ देखें, तो ज़ेहन इस तरफ़ जाएगा कि इन बुराइयों की वजह सही ज़ेहन-साज़ी का न होना है या सही तर्बियत की कमी। अब ज़ेहन-साज़ी के लिए फ़ौरी तौर पर स्टार्टिंग पॉइंट मिल जाता है।

सही ज़ेहन-साज़ी के लिए किसी हुकूमत की ज़रूरत नहीं, ज़ेहन-साज़ी के लिए सालेह इंसान की ज़रूरत होती है यानी अफ़राद की तर्बियत के लिए इस्लामी हुकूमत का न होना कोई रुकावट नहीं, मगर मौलाना मौदूदी साहब की नज़र से देखेंगे, तो इस्लामी हुकूमत का क़ायम न होना बुराई की फ़ौरी वजह बनकर सामने आएगा। अब पहला काम यह होगा कि हुकूमत हासिल करो और उसे इस्लामी हुकूमत बनाओ। फिर यहीं से मौजूदा हुकूमत के ख़िलाफ़ ज़ेहनी तौर पर बग़ावत शुरू हो जाती है, जो बाद के मरहले में अमली बग़ावत तक पहुँच जाती है, बल्कि यहाँ तक पहुँच जाती है कि मुआशरा जंग-ओ-जिदाल में तब्दील हो जाता है। जैसा कि फ़िल-वाक़े आज मुस्लिम ममालिक में 'अर-रबीअुल अरबी' (Arab Spring) के नाम से हो रहा है, जैसे—सीरिया, यमन, लीबिया और मिस्र वग़ैरह।

(मौलाना अब्दुल बासित उमरी, गुलबर्गा; 6 जुलाई, 2020)

जवाब

मेरे भाई मौलाना अब्दुल बासित उमरी, अस्सलामु अलैकुम व रहमतुल्लाह!

आपसे टेलीफ़ोन पर हुई गुफ़्तगू के पस-ए-मंज़र में आपका ख़त मेरे लिए एक आँखें खोल देने वाला ख़त है। इस ख़त को पढ़ने के बाद मेरे दिल में आपके बारे में जो एहसास पैदा हुआ, वह यह है कि मौजूदा हालात में आपकी यह तहरीर इंक़लाबी तहरीर साबित हो सकती है, बशर्ते आप दो मज़ीद चीज़ों का सबूत दे सकें— आप अपनी ज़िंदगी में एक इंक़लाब पैदा करें, जो दो सिफ़तों का हामिल हो : कामिल सादगी और मुकम्मल मअनों में क़नाअत।

कामिल सादगी किसी इंसान के लिए कामिल अज़्म और बा-मक़सद ज़िंदगी की अलामत है और क़नाअत इस बात की अलामत है कि वह इंसान हक़ीक़त-पसंदाना सोच का मालिक है।

15 जुलाई, 2020
वहीदुद्दीन, नई दिल्ली

ख़त्म-ए-नबुवत

क़ुरआन के मुताबिक़, ख़ुदा ने आपको नबियों के 'ख़ातिम' (33:40) की हैसियत से मबऊस फ़रमाया है। दूसरे अंबिया सिर्फ़ अल्लाह के रसूल थे और आप अल्लाह के रसूल होने के साथ ख़ातम-ए-नबीय्यीन भी हैं। पैग़ंबर-ए-इस्लाम सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के ख़ातम-ए-नबीय्यीन होने का एक पहलू यह है— सीधे तौर से पैग़ंबर की ज़ात के ज़रिए दावत के दौर का ख़ात्मा और पैग़ंबर के मानने वालों के ज़रिए दावती अमल का आग़ाज़।

दीन की सियासी ताबीर

बीसवीं सदी में मुसलमान नए हालात से दो-चार हुए। उनका एंपायर, मसलन— मुग़ल एंपायर और उसमानी एंपायर टूट गया। मुसलमानों के ऊपर हर एतिबार से मग़रिबी कौमों का ग़लबा क़ायम हो गया। मग़रिबी क़ौमें नई ताक़त के साथ उभरीं और अमलन सारे आलम पर छा गईं, जिनमें मुस्लिम क़ौमें भी शामिल थीं।

यह सूरतेहाल मुसलमानों के लिए एक सियासी चैलेंज बनी हुई थी। इसके नतीजे में मुसलमानों के अंदर सियासी रद्दे-अमल का ज़ेहन पैदा हुआ। इसी ज़माने में कार्ल मार्क्स का नज़रिया-ए-तारीख़ बड़े पैमाने पर फैला। कार्ल मार्क्स ने जो नज़रिया-ए-तारीख़ पेश किया, उसका ख़ास पहलू यह था कि उसने तारीख़ की एक माद्दी ताबीर पेश की, जिसे माद्दी ताबीर-ए-तारीख़ (materialistic interpretation of history) कहा जाता है। 1917 में जब कार्ल मार्क्स के पैरोकारों (कम्युनिस्ट पार्टी) को रूस में हुकूमत क़ायम करने का मौक़ा मिला, तो इसके बाद मार्क्सवादी फ़लसफ़ा सारी दुनिया में लोगों की तवज्जोह का मरकज़ बन गया।

इन हालात के ज़ेरे-असर मुस्लिम दुनिया में एक ज़ाहिरा पैदा हुआ। यह ज़ाहिरा ज़्यादातर ज़मानी हालात से हालात से मुतास्सिर होने का नतीजा था। इसके नतीजे में यह हुआ कि कुछ मुसलमान दानिशवरों ने इस्लाम को वक़्त के मेयार के मुताबिक़ साबित करने के लिए इस्लाम की सियासी ताबीर (political interpretation of Islam) पेश करना शुरू किया।

यह वही ज़ाहिरा है, जिसे हदीस में 'इत्तिबा-ए-यहूद' (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3456) के अलफ़ाज़ में बयान किया गया है। इस

हदीस में 'यहूद की इत्तिबा' से मुराद ज़वाल-याफ़्ता उम्मत का इत्तिबा है। ज़वाल के दौर में यहूद के उलमा ने अपनी बातों और तशरीहों को ऐसे मान लिया, जैसे वही हज़रत मूसा की असली शरीयत हों। उन्होंने उलमा की रायों को जोड़कर एक कानून बना लिया और असली दीन-ए-मूसा की जगह उसी को दीन कहकर पेश करने लगे, जैसे वही ख़ुदा का असली दीन हो।। चुनाँचे बाद के ज़माने में दीन-ए-यहूद की जो शक्ल तैयार हुई , वह तमामतर उलमा के बनाए हुए क़ानूनों पर मबनी था। यहूदियत की इस शक्ल में मारिफ़त (God realisation) और दावत जैसी चीज़ें तमाम-तर दरकिनार हो गईं। यही वाक़या उम्मत-ए-मुस्लिमा के दरमियान पेश आया।

इसी का यह नतीजा है कि मौजूदा ज़माने के उलमा और रहनुमा के यहाँ जिस दीन की चर्चा है, उसमें मारिफ़त और दावत जैसी असल तालीमात दरकिनार हो गई हैं, इसके बजाय सारा ज़ोर ज़ाहिरी क़वानीन और अहकाम पर दिया जा रहा है, जिसे बतौर ख़ुद वह इस्लामी निज़ाम का नाम देते हैं। इस्लाम को सियासी और समाजी निज़ाम के तौर पर पेश करना उनका वाहिद निशाना बन गया है और मारिफ़त व दावत जैसी चीज़ें उनके यहाँ भी उसी तरह ख़त्म हो गई हैं, जिस तरह वे इससे पहले यहूद के यहाँ ख़त्म गई थीं।

इस इनहिराफ़ को मबनी-बर-निज़ाम इस्लाम (system-based Islam) कहा जा सकता है। इस तसव्वुर-ए-दीन का नतीजा है कि उम्मत में एक अबदी क़िस्म के टकराव का माहौल पैदा हो गया है। यह टकराव इब्तिदाई तौर पर दूसरों को अपना हरीफ़ (rival) समझने की सूरत में शुरू होता है और फिर बढ़कर तशद्दुद, जंग और ख़ुद-कुश बमबारी तक पहुँच जाता है।

क़ुरआन को अगर किताब-ए-मारिफ़त के तौर पर लिया जाए, तो इसका तक़ाज़ा यह होता है कि क़ुरआन की आयतों में तदब्बुर

करो, क़ुरआन के ज़रिए ख़ालिक़ की मारिफ़त हासिल करो और फिर ख़ालिक़ की मारिफ़त में जीने वाले बन जाओ यानी वह इंसान, जिसे क़ुरआन में 'रब्बानी इंसान' (3:79) कहा गया है। गोया क़ुरआन अपनी असल हैसियत के एतिबार से हिदायत-ए-ख़ुदावंदी की पैरवी का नाम है, मगर क़ुरआन की निज़ामी या क़ानूनी ताबीर का नतीजा यह हुआ कि क़ुरआन अमली नफ़ाज़ (implementation) की किताब बन गया। अब उम्मत का निशाना यह क़रार पाया कि वह मौजूदा क़ानूनी और सियासी निज़ाम को लड़कर बदले और उसकी जगह वह क़ानूनी व सियासी निज़ाम नाफ़िज़ करे, जिसे बतौर ख़ुद उसने इस्लामी निज़ाम का दरजा दे दिया है।

बुढ़ापे का दौर

बुढ़ापे का दौर किसी इंसान के लिए उसकी ज़िंदगी का सबसे आख़िरी दौर है। यह दौर इस बात का एहसास दिलाने के लिए है कि तकलीफ़ इंसान के लिए कितनी ज़्यादा नाक़ाबिल-ए-बर्दाश्त है।

आलमी इस्लामी इत्तिहाद

कोई शख़्स आलमी इंसानी इत्तिहाद यानी यूनिवर्सल ब्रदरहुड की बात करे, तो इसका मतलब यह नहीं होता कि 'इंसानियत' के नाम पर एक मर्कज़ी हुकूमत क़ायम की जाए और सारी दुनिया के इंसानों को ताक़त के ज़ोर पर इसका ताबे बनाया जाए। आलमी इंसानी इत्तिहाद इंसानी क़दरों की बुनियाद पर मतलूब है, न कि सियासी इक़्तिदार की बुनियाद पर।

यही मामला इस्लाम का है। इस्लाम में बिला-शुब्हा यह मतलूब है कि तमाम दुनिया के मुसलमानों में इत्तिहाद हो। हज का आलमी इज्तिमा इसी की एक अलामत है, मगर आलमी इस्लामी इत्तिहाद का

मतलब यह नहीं है कि मुसलमानों की एक मर्कज़ी हुकूमत क़ायम हो और तमाम दुनिया के मुसलमान इस हुकूमत (या ख़िलाफ़त) के तहत सियासी तौर पर मुत्तहिद हो जाएँ। आलमी इस्लामी इत्तिहाद बिला-शुब्हा एक मतलूब चीज़ है, मगर आलमी इस्लामी हुकूमत या आलमी इस्लामी ख़िलाफ़त महज़ एक नारा है, जो न मुमकिन है और न मतलूब।

इस्लाम में असल अहमियत की चीज़ ख़ुदा की सच्ची मारिफ़त है और यह कि आदमी ख़ुदा की मर्ज़ी के मुताबिक़ दुनिया में जिए। हर एक ख़ुदा के रंग में रंगा हुआ हो। हर इंसान अपनी पसंद और ना-पसंद को ख़ुदा की पसंद और ना-पसंद के ताबे बना ले। इस्लामी इत्तिहाद यह है कि तमाम दुनिया के मुसलमान एक ख़ुदा को अपना इलाह समझें। वे मुहम्मद रसूलल्लाह को पैग़ंबर और ख़ातिम-उल-अंबिया मानते हों। सब यकसाँ तौर पर क़ुरआन के ऊपर ईमान रखते हों। सबके दिलों में यह यक़ीन ज़िंदा हो कि मौजूदा दुनिया आज़माइश की जगह है और आख़िरत की अगली दुनिया अपने अमल का अंजाम पाने की जगह।

इसी तरह सारी दुनिया के मुसलमानों में वही अख़्लाक़ और किरदार हो जो क़ुरआन और सुन्नत में बताया गया है। यहाँ तक कि एक शख़्स जब किसी मुसलमान से मिले तो वह पेशगी तौर पर यक़ीन कर सके कि वह अपनी आदत और अपने सुलूक और अपने किरदार के एतिबार से फ़लाँ क़िस्म का इंसान होगा।

आलमी इस्लामी इत्तिहाद की बुनियाद फ़िक्री और ईमानी यकसानियत है, न कि आलमी नौइयत का कोई सियासी और हुकूमती ढाँचा। इस्लामी इत्तिहाद इस्लामी अफ़राद के आज़ादाना फ़ैसले से क़ायम होता है। वह सियासी इक़्तिदार के ज़ोर पर न नाफ़िज़ हो सकता है और न नाफ़िज़ किया जा सकता।

ज़वाल-ए-उम्मत

उम्मत का ज़वाल क्या है? हदीसों में पेशगी तौर पर इसके बारे में बता दिया गया है। इन हदीसों को आम तौर पर 'हदीस-ए-फ़ितन' कहा जाता है। 'हदीस-ए-फ़ितन' दरअसल 'अहदीस बराए-ज़वाल' उम्मत ही का दूसरा नाम है। 'दौर-ए-फ़ितन' से मुराद उम्मत का 'दौर-ए-ज़वाल' है। यह ज़वाल फ़ितरत के क़ानून के तहत आता है और किसी उम्मत का इस मामले में इस्तिसना नहीं।

'उम्मत-ए-मूसा' को 'उम्मत-ए-अफ़ज़ल' कहा गया था, मगर उन पर ज़वाल आया। इसी तरह 'उम्मत-ए-मुहम्मद' को 'ख़ैर-ए-उम्मत' कहा गया, लेकिन फ़ितरत के क़ानून के मुताबिक़, 'ख़ैर-ए-उम्मत' पर भी ज़वाल का दौर आना यक़ीनी है। उम्मत पर दौर-ए-ज़वाल आने का मतलब क्या है? क़ुरआन के अलफ़ाज़ में इससे मुराद है— लंबे अर्से के नतीजे में अफ़राद-ए-उम्मत के अंदर 'क़सावत' का दौर आ जाना (57:16) यानी उम्मत की बाद की नस्लों में अफ़राद के अंदर दीन के बारे में हस्सासिय्यत ख़त्म हो जाए और इस बिना पर वह दीन के 'क़िश्र'(shell) को दीन का 'मग़्ज़' (kernel) समझने लगें। हदीस में इस हक़ीक़त को इन अलफ़ाज़ में बयान किया गया है—

مَسَاجِدُهُمْ يَوْمَئِذٍ عَامِرَةٌ، وَهِيَ خَرَابٌ مِنَ الْهُدَى.

"बाद के लोगों में तुम देखोगे कि उनकी मस्जिदों में नमाज़ियों की भीड़ होगी, लेकिन उनके दिल हिदायत से ख़ाली होंगे।"

(शुअब अल-ईमान, अल-बैअहक़ी, हदीस नं० 1908)

हदीसों के मुताले से मज़ीद यह मालूम होता है कि उम्मत-ए-मुस्लिमा का ज़वाल पिछली उम्मतों से भी ज़्यादा होगा। इसका

सबब यह है कि बाद के ज़माने में माद्दी तरक़्क़ियाँ होंगी, माल की फ़रावानी (abundance) होगी और लोगों का यह हाल हो जाएगा। وَأَنْ تَرَى الْحُفَاةَ الْعُرَاةَ الْعَالَةَ رِعَاءَ الشَّاءِ يَتَطَاوَلُونَ فِي الْبُنْيَان (सहीह मुस्लिम, हदीस नंबर 8) यानी तुम यह देखोगे कि नंगे पाँव, नंगे बदन वाले, ग़रीब, बकरियाँ चराने वाले, ऊँची इमारतों पर फ़ख़्र करेंगे। इसका मतलब यह नहीं है कि जो लोग ग़रीबी की हालत में होंगे, वही लोग ग़रीबी के बावजूद बड़ी-बड़ी इमारतें बनाएँगे, बल्कि इसका मतलब यह है कि क़दीम ज़माने में यह हाल था कि बादशाह लोग बड़े-बड़े महल बनाया करते थे, लेकिन बाद के ज़माने में माल की इतनी ज़्यादा फ़रावानी होगी कि आम लोग भी शाही सामान के मालिक हो जाएँगे।

'हदीस-ए-फ़ितन' की इन बातों को मैंने उस वक़्त समझा, जबकि मैं पहली बार अमेरिका गया। वहाँ मेरा क़ियाम कैलिफ़ोर्निया में था। एक दिन एक नौजवान मुझे अपनी नई बड़ी गाड़ी पर ले गए, ताकि मुझे वहाँ का डिज़्नीलैंड (Disneyland) दिखाएँ। मैंने नौजवान से पूछा कि आप तो जल्द ही अमेरिका आए हैं, फिर आपके लिए कैसे मुमकिन हुआ कि आप हर क़िस्म के आला सामान अपने लिए हासिल कर लें?

उन्होंने जवाब दिया कि यह अमेरिका की अर्थव्यवस्था का करिश्मा है। आप अमेरिका आएँ और यहाँ आपके लिए एक बड़ी कंपनी में जॉब हासिल हो जाए, तो इसके बाद हर चीज़ आप 'लोन' (loan) के ज़रिए हासिल कर सकते हैं और उसकी अदाइगी हर महीने आपकी सैलरी से कटकर सीधे तौर से लोन कंपनी के अकाउंट में जाती रहेगी। इस सिस्टम के तहत आप यहाँ हर चीज़ हासिल कर सकते हैं। मसलन— मॉडर्न स्टाइल के शानदार मकान, बड़ी गाड़ी, फ्रिज और वॉशिंग मशीन, मोबाइल फ़ोन, कंप्यूटर और लैपटॉप वग़ैरह, यहाँ तक

कि ऐश-ओ-इशरत के वे सामान, जिनका पहले ज़माने में बादशाह लोग भी ख़्वाब नहीं देख सकते थे, वह यहाँ क़र्ज़ के ज़रिए एक आम आदमी हासिल कर सकता है। शर्त सिर्फ़ यह है कि आपके पास एक अच्छी जॉब मौजूद हो।

इस कल्चर ने जो सबसे बड़ी बुराई पैदा की, वह है जुनून की हद तक हाई स्टेटस का हुसूल और इसके लिए किसी भी हद तक जाने से पस-ओ-पेश (hesitation) न करना। यह कल्चर पहले आला तरक़्क़ी-याफ़्ता मुल्कों में शुरू हुआ, अब दुनिया के तक़रीबन हर मुल्क में इसका रिवाज हो चुका है। इस रिवाज का नतीजा है कि आज के इस माद्दी दौर में अगरचे एक मज़हबी इंसान ख़ुदा को अपना माबूद मानता है, लेकिन अमलन उसका ज़्यादा बड़ा कंसर्न माद्दी ऐतिबार से हाई स्टेटस का हुसूल है। फ़र्क़ सिर्फ़ यह है कि मज़हबी लोगों ने अपनी माद्दा-परस्ती के लिए ऐसे तरीक़े इख़्तियार कर लिये हैं, जो बज़ाहिर दीनी अमल लगते हैं, मगर हक़ीक़त इसके बरअक्स है। मसलन—आलीशान मस्जिदों की तामीर, पैग़ाम-ए-निकाह की रस्म, रमज़ान में क़िस्म-क़िस्म के खाने की धूम वग़ैरह।

ज़ाहिरी दीनदारी के इस कल्चर का सबब है कि लोगों ने दीन के मग़ज़ को छोड़कर क़िश्र को अपना असल दीन समझ लिया है। एक इंसान बज़ाहिर मज़हबी नज़र आता है, मगर उसका दिल तक़्वे और ख़ुशू से ख़ाली होता है, क्योंकि मग़ज़-ए-दीन के लिए सबसे पहले अपनी ज़ात के एतिबार से क़ुर्बानी देनी पड़ती है यानी ख़्वाहिशात-ए-नफ़्स की क़ुर्बानी। इसके बरअक्स क़िश्र के लिए ज़्यादा मेहनत की ज़रूरत नहीं होती, वह बड़ी क़ुर्बानी के बग़ैर पैसे के ज़रिए बड़ी आसानी से हासिल किया जा सकता है।

ख़ुदाई हुक्म

क़ुरआन में आया है—

إِنِ الْحُكْمُ إِلَّا لِلَّهِ أَمَرَ أَلَّا تَعْبُدُوا إِلَّا إِيَّاهُ ذَٰلِكَ
الدِّينُ الْقَيِّمُ وَلَٰكِنَّ أَكْثَرَ النَّاسِ لَا يَعْلَمُونَ.

> "हुक्म सिर्फ़ अल्लाह के लिए है। उसने हुक्म दिया है कि उसके सिवा किसी की इबादत न करो। यही सीधा दीन है, मगर अकसर लोग नहीं जानते।" (क़ुरआन, 12:40)

इस आयत में 'हुक्म' का लफ़्ज़ बतौर 'ख़बर' है, जबकि 'इबादत' का लफ़्ज़ बतौर 'इंशा' है। 'ख़बर' का मतलब है— किसी होने वाले वाक़ये के बारे में इन्फ़ॉर्मेशन देना, इत्तिला करना और 'इंशा' का मतलब है— किसी बात के करने या न करने का मुतालिबा करना या हुक्म देना। इस आयत में यह ख़बर दी गई है कि कायनात में हर चीज़ पर हुक्म सिर्फ़ अल्लाह का क़ायम है और वह हमेशा से हमेशा तक क़ायम रहेगा और इस कायनात का मालिक होने की हैसियत से उसका अम्र (command) यह है कि इंसान अपने इख़्तियाराना इरादे के तहत सिर्फ़ उसी की इबादत करे, उसके अलावा किसी और की इबादत न करे। क़ुरआन की इस आयत से हुकूमत-ए-इलाही का नज़रिया निकालना पूरी तरह से बेबुनियाद है। यह 'ख़बर' को 'इंशा' बनाने के हम-मअनी है। ऐसा करना अपनी राय से की गई ग़लत तफ़्सीर (मज़्मूम तफ़्सीर-बिर्राय) के दायरे में आता है।

अस्ल यह है कि अल्लाह का हुक्म सारी कायनात में बिल-फ़ेल क़ायम है, न कि इंसान उसे क़ायम करे। यह कायनात में जारी एक फ़ितरी क़ानून की ख़बर दी जा रही है। अब इंसान को यह करना है

कि वह अल्लाह रब्बुल आलमीन को दरियाफ़्त करे। उसकी दरियाफ़्त इतनी ज़्यादा गहरी हो कि वह "أَنْ تَعْبُدَ اللهَ كَأَنَّكَ تَرَاهُ" (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 50) का केस बन जाए यानी तुम अल्लाह की इबादत इस तरह करो, गोया कि तुम उसे देख रहे हो। बात सिर्फ़ इबादत की हद तक न हो, बल्कि वह अपनी पूरी ज़िंदगी इसी में जीने लगे। क़ुरआन के मुताबिक़, उसकी नमाज़, उसकी क़ुर्बानी, उसका जीना और उसका मरना सब कुछ अल्लाह रब्बुल आलमीन के लिए हो जाए (6:162)। वह हर चीज़ में अल्लाह की कार-फ़रमाई का मुशाहदा करे, वह कामिल मअनों में अल्लाह का अब्द बन जाए। उसके लिए अल्लाह का मामला सिर्फ़ रस्मी अक़ीदे का मामला न रहे, बल्कि अल्लाह उसके लिए एक ज़िंदा अक़ीदे का मामला बन जाए, जैसा कि आयत-उल-कुर्सी में बयान किया गया है। आयत-उल-कुर्सी एक लंबी आयत है, उसका तर्जुमा यह है—

> "अल्लाह, उसके सिवा कोई माबूद नहीं। वह ज़िंदा है, सबका थामने वाला (अल-हय्यु अल-क़य्यूम)। उसे न ऊँघ आती है और न नींद। उसी का है, जो कुछ आसमानों और ज़मीन में है। कौन है, जो उसके पास उसकी इजाज़त के बग़ैर सिफ़ारिश करे। वह जानता है, जो कुछ उनके आगे है और जो कुछ उनके पीछे है और वह उसके इल्म में से किसी चीज़ का इहाता नहीं कर सकते, मगर जो वह चाहे। उसकी हुकूमत आसमानों और ज़मीन पर छाई हुई है। वह थकता नहीं उनके थामने से और वही है, बुलंद मर्तबा, बड़ा।" (क़ुरआन, 2:255)

इंसान के लिए अल्लाह की दरियाफ़्त का एक ज़रिया कायनाती निशानियों में ग़ौर-ओ-फ़िक्र करना है। मॉडर्न ज़माने में साइंसी दरयाफ़्तों ने इन निशानियों का दायरा बहुत वसीअ कर दिया है। मसलन— इंसान जब कायनात का मुशाहिदा (observe) करता है,

वह पाता है कि कहकशाएँ (galaxies) और पूरा शम्सी निज़ाम (solar system) निहायत सटीकता (accuracy) के साथ चल रहे हैं। सूरज का निकलना और डूबना इंतिहाई सेहत के साथ पेश आता है। मिलियन और बिलियन साल के अंदर भी इसमें कोई फ़र्क़ नहीं आता। वह दरियाफ़्त करता है कि कायनात मुसलसल तौर पर फैल रही है। चारों तरफ़ उसका फैलना इंतिहाई सटीकता के साथ वाक़े हो रहा है। मुतहर्रिक 'मिल्की वे' (Milky Way) के एक किनारे पर पूरा शम्सी निज़ाम इस तरह क़ायम है कि शम्सी निज़ाम भी हरकत में है और 'मिल्की वे' भी हरकत में है। यह पूरा वाक़या हद दर्जा सेहत के साथ पेश आ रहा है। मिलियन और बिलियन साल के बाद भी इसमें कोई फ़र्क़ नहीं आता। इस तरह के बेशुमार निज़ामात हैं, जो इस ला-महदूद हद तक वसीअ ख़ला में फैले हुए हैं। मसलन— सितारों का निज़ाम और एक्सोप्लानेटरी सिस्टेम्स (exoplanetary systems) वग़ैरह। इनमें से हर एक मुसलसल तौर पर बेहद तेज़ रफ़्तार, मगर इंतिहाई सेहत के साथ गर्दिश कर रहा हैं, लेकिन इनमें कभी अदना दर्जे का भी टकराव नहीं होता। यह इस बात की तरफ़ इशारा है कि इस कायनात का इंतज़ाम करने वाला एक ज़िंदा और सबको चलाने वाला ख़ालिक़-ओ-मालिक है। उसके बग़ैर यह इंतज़ाम मुमकिन नहीं।

क़ुरआन की मज़कूरा आयत में अज़मत-ए-ख़ुदावंदी का ज़िक्र है, न कि ज़मीन पर हुक्म-ए-ख़ुदावंदी को ताक़त के ज़रिए नाफ़िज़ करने का कोई मुतालिबा। इसका मतलब यह है कि इंसान कायनात में जारी ख़ुदा के हुक्म का मुशाहदा करे और उसके ज़रिए ख़ुदा की ख़ुदाई को पहचाने, फिर अपनी मर्ज़ी से ख़ुदा के आगे झुक जाए।

तामीरी तरीक़ा

सैयद मंसूर आग़ा (पैदाइश : 1945) दिल्ली में रहते हैं, उनका वतन मेरठ है। 1 जुलाई, 1996 की मुलाक़ात में उन्होंने अपना एक तजुर्बा सुनाया, जिसमें एक क़ीमती सबक़ मौजूद है। 1963-64 में वे मेरठ कॉलेज के तालिब-ए-इल्म थे। उनके पॉलिटिकल साइंस के उस्ताद मिस्टर के.सी. गुप्ता थे। हिंदुस्तान की सियासी तारीख़ पर जब उन्होंने लेक्चर देना शुरू किया, तो यह आग़ा साहब के लिए बहुत परेशानकुन साबित हुआ। यही हाल उनके साथी मुस्तईन-उर-रहमान साहब का था। मिस्टर गुप्ता ने अपने लेक्चर में तक़सीम और सियासी तारीख़ को इस तरह बताया, जिसमें सारा इल्ज़ाम मुसलमानों पर आता था। दोनों तालिब-ए-इल्मों ने आपस में मशवरा किया कि क्या करना चाहिए। आख़िर में उन्होंने तय किया कि ग़ुस्सा होने या मुश्तइल होने से कोई फ़ायदा नहीं। हम लोगों को अपने आपको इसके लिए तैयार करना चाहिए कि हम मिस्टर गुप्ता की इल्मी काट कर सकें।

तयशुदा प्रोग्राम के मुताबिक़ अब दोनों अपना ख़ाली वक़्त लाइब्रेरी में गुज़ारने लगे। वे हिंदुस्तान की सियासी तारीख़ और तक़सीम-ए-हिंद के तारीखी रिकॉर्ड का मुताला करते। इस तरह वे पूरी ज़ेहनी तैयारी के साथ क्लास में जाने लगे। उन्होंने यह किया कि जब गुप्ता साहब तारीख़ की कोई ग़लत ताबीर पेश करते, तो आग़ा साहब और उनके साथी फ़ौरन उन्हें टोकते और पूरे हवाले के साथ कहते कि आप ऐसा क्योंकर कहते हैं। फ़ुलाँ किताब में तो यह बात इस तरह लिखी हुई है और फ़ुलाँ मुअर्रिख़ ने तो इसे इस तरह बयान किया है।

कुछ दिन ऐसा चलता रहा। आख़िरकार एक दिन मिस्टर गुप्ता ने दोनों तालिब-ए-इल्म को अपने कमरे में बुलाया। उन्होंने कहा

कि मेरे दिल में तुम लोगों की बहुत क़द्र है। तुम लोगों ने मेरी तस्हीह (correction) कर दी और मुझे रोशनी दिखाई। इसके बाद मिस्टर गुप्ता के लेक्चर का अंदाज़ बिलकुल बदल गया। वे आख़िरी वक़्त तक दोनों मुस्लिम तालिब-ए-इल्म के साथ निहायत इज़्ज़त का सुलूक करते रहे।

इस तरह के किसी मसले के हल का यही तामीरी तरीक़ा है और मसाइल हमेशा तामीरी तरीक़े से हल होते हैं, न कि तख़रीबी तरीक़े से।

एक इंटरव्यू

(तीसरी क़िस्त)

सवाल : मौलाना, फ़सादात के बारे में आम तौर पर इस तरह की ख़बरें आती हैं कि हिंदू लीडरों की इश्तिआल-अंगेज़ी (provocation) फ़सादात का बाइस बन जाती है। आप बताएँगे कि फ़सादात का आग़ाज़ किस तरह होता है और फ़ौरी अस्बाब क्या होते हैं?

जवाब : बड़ा अहम सवाल है कि फ़साद किस तरह शुरू होता है। इसे समझाने के लिए मैं आपको दो मिसालें दूँगा।

अलीगढ़ में हर साल दंगल होता है, जिसमें हिंदू और मुसलमान दोनों शरीक होते हैं। अगस्त, 1978 के एक दंगल में मुस्लिम पहलवान को शिकायत हुई कि उसके साथ धाँधली की गई है। उसकी शिकायत का निशाना सुरेश भूरे था, जिससे उसकी रक़ाबत (rivalry) चली आ रही थी। दंगल के बाद मुसलमान पहलवान ने तय कर लिया कि सुरेश भूरे से इंतक़ाम लेना है। अक्टूबर की एक शाम को अंसार अहमद पहलवान और उसके साथी सुरेश भूरे को अकेला पाकर उस पर हमलावर हो गए और छुरे से वार करके उसे ज़ख़्मी कर दिया। वह मर गया। सुरेश भूरे का मरना शहर के हारे हुए फ़िर्क़ा-परस्त लीडरों के

लिए एक नादिर मौक़ा था। उन्होंने जुलूस निकाला और नारा लगाया कि ख़ून का बदला ख़ून। भड़काऊ तक़रीरें करके पूरे शहर का माहौल बिगाड़ दिया गया, यहाँ तक कि फ़साद शुरू हो गया और अलीगढ़ जलकर ख़ाक हो गया।

हिंदू-मुस्लिम फ़साद अकसर उन मुक़ामात पर होते हैं, जहाँ मुसलमान माली एतिबार से बेहतर हैं। इसलिए यह समझ लिया गया कि यह मुसलमानों की आर्थिक को बरबाद करने की मुनज़्ज़म साज़िश है। हालाँकि इसकी सादा-सी वजह यह है कि मुसलमान जिन मुक़ामात पर बेहतर हैसियत में हैं, वहीं वे जज़्बाती हरकतें भी ज़्यादा करते हैं। किसी आदमी को पुर-जोश कार्रवाई करने के लिए हमेशा समाजी पुश्त-पनाही (support) दरकार होती है। यह समाजी पुश्त-पनाही उन मुक़ामात के मुसलमानों को ब-आसानी मिल जाती है, जहाँ वे इक़्तिसादी एतिबार से बेहतर हों। मुसलमानों के आपस के झगड़े और इख़्तिलाफ़ात भी उन्हीं मुक़ामात पर ज़्यादा होते हैं, जहाँ उन्हें किसी क़द्र मआशी इस्तिहकाम हासिल हो। इसी तरह मुस्लिम और ग़ैर-मुस्लिम टकराव भी अकसर उन मुक़ामात पर होता है, जहाँ मुसलमान तादाद और माली एतिबार से अपने आपको ज़्यादा महफ़ूज़ समझते हैं।

ख़ुदा और रसूल का हुक्म है कि अपने आदमी को इब्तिदाई शरारत के वक़्त पकड़ो, मगर वहाँ मुसलमानों के क़ायदीन सिर्फ़ उस वक़्त हरकत में आते हैं, जब फ़साद बढ़कर अपनी उमूमी बरबादी तक पहुँच जाता है। इब्तिदाई चिंगारी को भड़काने वाले का हाथ पकड़ने के लिए कोई नहीं उठता। जब एक मुसलमान दूसरे मुसलमान को सताता है, तो कोई भी मौक़े पर पहुँचकर ज़ालिम मुसलमान का हाथ नहीं पकड़ता। हालाँकि इस क़िस्म के मज़लूम मुसलमान अकसर नेगेटिव जज़्बात का शिकार होकर ऐसी कार्यवाहियाँ करते हैं, जिसकी सज़ा पूरे समाज को भुगतनी पड़ती है।

इसी तरह जब एक ग़ैर-मुस्लिम से शिकायत पैदा होने पर एक मुसलमान उसके ख़िलाफ़ तख़रीबी मंसूबा बनाता है या जब कुछ मुसलमान ग़ैर-मुस्लिमों के सामने यह बेमानी मुतालिबा लेकर खड़े हो जाते हैं कि हमारी नमाज़ के वक़्त इबादत-गाह की घंटियाँ न बजाओ या मस्जिद के सामने से अपना जुलूस न लेकर जाओ, तो ऐसे मौक़ों पर मुसलमानों में से कोई नहीं उठता कि उन सिरफिरे मुसलमानों को रोके।

ख़ुदा की हिदायत यह है कि हम इनफ़िरादी फ़साद के वक़्त मुतहर्रिक हों, मगर हमारे तमाम लीडर सिर्फ़ इज्तिमाई फ़साद के वक़्त हरकत में आते हैं। यह ख़ुदा के रास्ते पर चलने के बजाय ख़ुद-साख़्ता रास्ते पर चलना है और ख़ुद-साख़्ता रास्ते पर चलना ख़ुदा के ग़ज़ब को दावत देना है।

मई, 1984 में भिवंडी, ठाणे और बंबई (मुंबई) के इलाक़े में ख़ूँरेज़ फ़साद हमारे मुसलमान रहनुमाओं के अंदाज़-ए-कार की बेहतरीन मिसाल है। यह फ़साद इतना शदीद था कि अख़बारों ने इसे ज़मीन के ऊपर जहन्नुम क़रार दिया। वाक़या यह था कि इंतिहा-पसंद हिंदू तंज़ीम के लीडर बाल ठाकरे ने अप्रैल, 1984 में चौपाटी के मुक़ाम पर एक तक़रीर की। न मुल्क की किसी न्यूज़ एजेंसी ने इस तक़रीर ब्रॉडकास्ट किया और न किसी अख़बार ने इसकी रिपोर्ट शाए की। कुछ मक़ामी नौइयत के मराठी अख़बारों ने इसकी रिपोर्टिंग की, लेकिन यह इश्तिआल-अंगेज़ नहीं थी। अलबत्ता बंगलौर के उर्दू अख़बार 'नशेमन' ने इसकी जो रिपोर्ट शाए की, वह मुसलमानों के लिए ख़ासी इश्तिआल-अंगेज़ साबित हुई। बाद में बंबई के एक अख़बार 'आलम' ने इसे तेज़-ओ-तुंद (fast and furious) सुर्ख़ियों के साथ नक़ल किया। इसके बाद आदत के मुताबिक़ उर्दू अख़बारों ने पुरशोर तब्सिरे किए। इन अख़बारात का कहना था कि बाल ठाकरे ने क़ुरआन और पैग़ंबर-ए-इस्लाम की तौहीन की है। हालाँकि बाल ठाकरे ने दिल्ली की इंग्लिश मैगज़ीन 'लिंक' को एक इंटरव्यू देते हुए इसकी तरदीद की और

उसे झूठ क़रार दिया और यह पेशकश भी की कि तक़रीर का टेप सुन लिया जाए, ताकि दूध-का-दूध और पानी-का-पानी हो जाए।

3 मई को भिवंडी में शिव जयंती का जुलूस निकला, हालाँकि पहले इसकी इजाज़त नहीं ली गई थी। मुसलमानों को जुलूस पर एतराज़ था। बहरहाल हिफ़ाज़ती इक़्दामात के सबब जुलूस आफ़ियत से गुज़र गया। 11 मई को मुसलमानों ने एक ग़ुस्से भरा जुलूस निकाला, जोशीली तक़रीरें कीं और बाल ठाकरे की मूरत बनाकर उसे पुरानी चप्पलों का हार पहनाया गया। इस फ़िज़ा में 16 मई को शब-ए-बरात मनाने का फ़ैसला किया गया। भिवंडी की सड़कें और गलियाँ, जिनकी गंदगी को ख़त्म करने का कभी किसी मुसलमान को ख़याल न आया था, उन्हें सब्ज़ झंडियों से सजाया जाने लगा। झंडे का जिहाद यहाँ तक पहुँचा कि पुरजोश मुसलमानों ने एक मुक़ाम पर, जहाँ पहले से शिवसेना का झंडा लगा हुआ था, वहाँ सब्ज़ झंडा लहरा दिया, जो उनके ख़याल में इस्लामी झंडा था। इस इश्तिआल की फ़िज़ा में 16 मई को शिवसेना के लीडरों ने 'बंबई बंद' मनाया, जिसने इश्तिआल को आख़िरी हदों तक पहुँचा दिया और फिर 17 मई को भिवंडी में फ़साद फूट पड़ा। यह फ़साद इतना शदीद था कि चंद दिनों के अंदर अरबों रुपये का माली नुक़सान हुआ। जानी नुक़सान इसके अलावा था। फ़साद को कंट्रोल करने के लिए फ़ौज की मदद लेनी पड़ी। यह कहने की ज़रूरत नहीं कि नुक़सान यकतरफ़ा था।

हदीस में मोमिन की यह तारीफ़ की गई है कि वह ऐसा इक़्दाम नहीं करता, जिससे निपटने की उसके अंदर ताक़त न हो (सुनन तिर्मिज़ी, हदीस नंबर 4016), मगर यहाँ मुसलमानों ने ऐसा इक़्दाम किया, जिसमें वे छुरी के मुक़ाबले में ख़रबूज़ा साबित हुए।

जो मुसलमान इस क़िस्म के ग़ैर-हकीमाना अफ़आल में मुब्तला हों, समझ में नहीं आता कि उनकी इस्लामियत को किस ख़ाने में रखा जाए? (जारी)

डायरी : 1986

23 जून, 1986

मुझे अपनी ज़िंदगी में बार-बार एक ही तरह का तजुर्बा हुआ है। अब तक इसमें एक भी अपवाद नहीं मिला और तजुर्बे के इस लंबे अरसे में बड़े लोगों के नाम भी शामिल हैं और छोटे लोगों के नाम भी। वह तजुर्बा यह है कि एक शख़्स इब्तिदाई ताल्लुक़ात में मेरे साथ ख़ुश-अख़्लाक़ी बरतता है, वह बड़े-बड़े अलफ़ाज़ में मेरा एतिराफ़ करता है, वह मेरे मिशन में भरपूर साथ देने का इक़रार करता है। उसके बाद जब ताल्लुक़ात बढ़ते हैं और कोई इख़्तिलाफ़ी बात सामने आती है या किसी वजह से उसकी अना पर चोट लगती है, तो अचानक वही आदमी दूसरा आदमी बन जाता है।

मेरी तारीफ़ करने वाला मेरी बुराई करने लगता है। मेरा साथ देने वाला मेरा दुश्मन बन जाता है। जो शख़्स पहले मेरे मुक़ाबले में ख़ुश-अख़्लाक़ी से पेश आता था, अब वह मेरे मुक़ाबले में बद-अख़्लाक़ी का नमूना नज़र आने लगता है, यहाँ तक कि मुझे नुक़सान पहुँचाना उसका पसंदीदा काम बन जाता है। ।

इससे मालूम होता है कि मौजूदा ज़माने के मुसलमान अख़्लाक़ के एतिबार से ऐन उस मुक़ाम पर हैं, जहाँ पहले यहूद थे। मामूल के हालात में अच्छा बने रहना और ग़ैर-मामूली वाले हालात पैदा होते ही कुछ से कुछ हो जाना, यह यक़ीनी तौर पर यहूदियत है और यही यहूदियत है, जिस पर आज के मुसलमान क़ायम हैं।

मोमिन व मुस्लिम वह है, जो अल्लाह से डरे और अल्लाह से डरने वाला आदमी ऐसा नहीं कर सकता कि वह दोस्ती के वक़्त अच्छा बना रहे और इख़्तिलाफ़ के नुक़सान पहुँचाने का तरीक़ा इस्तेमाल करे।

24 जून, 1986

आफ़ताब अहमद साहब की लड़की की शादी थी। शादी की तक़रीब (ceremony) ग्रीन पार्क के क़रीब (बारातघर) में हुई। आफ़ताब अहमद साहब इंजीनियर्स इंडिया (नई दिल्ली) में ख़रीदारी के अफ़सर हैं। इंजीनियर्स इंडिया में 99 फ़ीसद हिंदू साहिबान काम करते हैं। आफ़ताब अहमद साहब ने ख़ुद आकर इसरार किया था, इसलिए मैं भी शादी की तक़रीब में शरीक हो गया। हालाँकि इस तरह की तक़रीबात में शिरकत मेरे ज़ौक़ के सरासर ख़िलाफ़ है।

आफ़ताब अहमद साहब ने गुफ़्तगू के दौरान बताया कि मैंने अपने हिंदू साथियों को तक़रीब में शिरकत का दावतनामा दिया, तो उन्होंने कहा कि हम ज़रूर आएँगे, ताकि देखें कि मुसलमानों की शादी किस तरह होती है। आफ़ताब अहमद साहब ने कहा कि हमारे यहाँ तो बस 5 मिनट में निकाह हो जाता है। आफ़ताब अहमद साहब ने बताया कि इसे सुनकर वे लोग ताज्जुब में पड़ गए— They were surprised.

हिंदू साहिबान ने कहा कि आप लोग बहुत अच्छे हैं। हम हिंदुओं के यहाँ तो शादी की तक़रीबात में 3-3 दिन लग जाते हैं।

इस्लाम की हर तक़रीब सादा और फ़ितरी होती है। ताहम यह सिर्फ़ 'मुसलमानों के मज़हब' की ख़ुसूसियत नहीं, बल्कि तमाम ख़ुदाई मज़ाहिब की ख़ुसूसियत है। हर दीन जो ख़ुदा की तरफ़ से आया, वह इब्तिदा में सादा और फ़ितरी ही था, मगर बाद में उनमें मिलावट हुई और इसकी वजह से उनकी शक्ल कुछ से कुछ हो गई।

इस्लाम चूँकि मिलावटों से पाक है, इसलिए वह अपनी अस्ल सादगी पर बदस्तूर बाक़ी है। इस्लाम के पैरवों ने भी अगरचे बाद में इज़ाफ़े किए, मगर ये इज़ाफ़े अस्ल मत्न में शामिल न हो सके। इसलिए दूसरे मज़ाहिब के बरअक्स इस्लाम में ऐसा है कि अगरचे उसमें हर

क़िस्म के इज़ाफ़े किए जा चुके हैं, मगर ये इज़ाफ़े मुसलमानों की अपनी अमली ज़िंदगी में हैं, न कि क़ुरआन के मुक़द्दस मत्न में।

25 जून, 1986

जनाब इसरार अहमद साहब (एम.ए.) दिल्ली के लेफ़्टिनेंट गवर्नर के प्रेस सैक्रेटरी हैं। उनके यहाँ 'अल-रिसाला' जाता है। बहुत दिनों के बाद उनसे मुलाक़ात हुई, तो उन्होंने बताया कि मैं पाबंदी के साथ 'अल-रिसाला' पढ़ता हूँ और पढ़ने के बाद उसे लेफ़्टिनेंट गवर्नर साहब के पास भेज देता हूँ।

इसरार अहमद साहब ने बातचीत के दौरान बताया कि मैं मौजूदा सर्विस में 9 साल से हूँ। इस दरमियान मैंने सात लेफ़्टिनेंट गवर्नर साहबों के साथ काम किया है। ये सब-के-सब अच्छी उर्दू जानने वाले लोग थे, बल्कि वे केवल उर्दू ही जानते थे। हिंदी से तक़रीबन ना-वाक़िफ़ थे।

मैंने पूछा कि क्या दिल्ली के लिए यह गवर्नमेंट की पॉलिसी है कि यहाँ उर्दू जानने वाले लेफ़्टिनेंट गवर्नर रखा जाए। उन्होंने कहा कि ऐसा नहीं है। असल बात यह है कि लेफ़्टिनेंट गवर्नर के ओहदे के लिए सीनियर आदमी का चुनाव किया जाता है और हिंदुओं में जो सीनियर व पुराने लोग हैं, वे अकसर उर्दू जानते हैं। इसके अलावा जो लोग विभाजन के बाद पाकिस्तान से आए हैं, वे तो सब-के-सब उर्दू बोलने वाले हैं। गवर्नरी वग़ैरह के ओहदे अकसर उन्हीं हज़रात को दिए जाते हैं।

एक वक़्त था, जब हिंदू— कम-से-कम शुमाली हिंद (North India)) के हिंदू— अच्छी तरह उर्दू से वाक़िफ़ थे। मुसलमान अपनी मादरी ज़बान में उन्हें इस्लाम का पैग़ाम पहुँचा सकते थे, मगर कई नस्लें गुज़र गईं और मुसलमानों ने यह काम नहीं किया। इसके बाद देश का विभाजन हुआ और नए हुकमरानों ने देश को दूसरे दिशा में चलाना शुरू किया।

अब हिंदू की नई पीढ़ी और मुसलमानों के दरमियान एक क़िस्म का ज़बान का फ़र्क़ पैदा हो गया है। चुनाँचे हिंदुओं की नई नस्ल तक इस्लाम का पैग़ाम पहुँचाना इंतिहाई हद तक मुश्किल हो चुका है। अब अमलन वही थोड़े-से लोग बच गए हैं, जो हिंदुओं की पुरानी नस्ल से ताल्लुक़ रखते हैं। यह आखिरी तवक़्क़ो है, जिससे मुसलमानों को फ़ायदा उठाना चाहिए।

30 जून, 1986

मैं 1967 में दिल्ली आया। इब्तिदा में तक़रीबन 15 साल मेरा ठिकाना पुरानी दिल्ली में रहा। पुरानी दिल्ली में छोटी-सी जगह में बेहिसाब इंसान बसे हुए हैं। कहा जाता है कि यह एशिया का सबसे ज़्यादा घना इलाका है। मैं जब पुरानी दिल्ली में था, तो वहाँ इंसानों के शोर से परेशान रहता था। मैं सोचता था कि अगर नई दिल्ली में रहने की सूरत बन जाए, तो वहाँ ज़्यादा सुकून के साथ काम हो सकता है।

1983 में नई दिल्ली में मर्कज़ क़ायम हुआ और अल्लाह तआला ने यहाँ रहने की सूरत पैदा फ़रमा दी, मगर असल मसले से फिर भी छुट्टी नहीं मिली। पुरानी दिल्ली में अगर इंसानों का शोर था, तो यहाँ कुत्तों का शोर सुनना पड़ा। यहाँ के आला तालीम-याफ़्ता और ख़ुशहाल लोग आम तौर पर अपने घरों में कुत्ते पाले हुए थे और वे बराबर भौंकते रहते थे। नई दिल्ली में मैं इंसानी शोर के माहौल से बाहर निकल आया था, मगर कुत्तों के शोर से मैं अब भी मामून (safe) न था।

शायद मौजूदा दुनिया में शोर से छुट्टी मिलने वाली नहीं। बे-शोर का माहौल इंसान को सिर्फ़ जन्नत में मिलेगा। एक हदीस में आया है कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम के पास जिब्रील आए और कहा कि अल्लाह ने ख़दीजा को अपना सलाम भेजा है। एक और रिवायत के अलफ़ाज़ हैं—

"أُمِرْتُ أَنْ أُبَشِّرَ خَدِيجَةَ بِبَيْتٍ مِنْ قَصَبٍ، لَا صَخَبٌ فِيهِ وَلَا نَصَبٌ"

"मुझे हुक्म दिया गया कि मैं ख़दीजा को जन्नत में एक ऐसे मकान की ख़ुशखबरी दूँ, जो याक़ूत का बना हुआ होगा और उसमें न शोर होगा और न तकलीफ़।"

(सीरत इब्न हिशाम, जिल्द 1, सफ़्हा 214)

शख़्सियत-परस्ती, तर्बियत-साज़ी

23 नवंबर, 2024 को निज़ामुद्दीन वेस्ट में सी०पी०एस० इंटरनेशनल के नए सेंटर का उद्घाटन किया गया है। इस मौक़े पर एक फ़र्क़ को समझना ज़रूरी है। वह यह कि शख़्सियत-परस्ती एक चीज़ है और किसी शख़्सियत के इल्म-ओ-हिकमत से ज़िंदगी की सीख हासिल करना अलग बात है। शख़्सियत-परस्ती (personality cult) का मतलब है— किसी इंसान की ज़ात के बारे में हद से ज़्यादा बढ़ा-चढ़ाकर सोचना, उसके बारे में ग़ुलू करना और उसकी शख़्सियत को ज़रूरत से ज़्यादा बड़ा बनाकर लोगों के सामने पेश करना। हदीस-ए-रसूल में इसी क़िस्म की शख़्सियत-परस्ती से मना किया गया है (सहीह अल-बुख़ारी, हदीस नंबर 3445)। इसके बरअक्स किसी इंसान के इल्म-ओ-हिकमत से फ़ायदा उठाना और इसे फैलाना इस्लाम में पसंदीदा अमल है। इस्लाम की पूरी तारीख़ में यह अमल जारी रहा है। इस्लामी लिटरेचर में इसका मुताला किया जा सकता है। इस सिलसिले की एक मुताल्लिक़ हदीस यह है। हज़रत अबू बक्र रिवायत करते हैं कि रसूलुल्लाह सल्लल्लाहु अलैहि वसल्लम ने कहा—

"اغْدُ عَالِمًا أَوْ مُتَعَلِّمًا أَوْ مُسْتَمِعًا أَوْ مُحِبًّا وَلَا تَكُنِ الْخَامِسَ فَتَهْلَكَ"

"इल्म फैलाने वाले बनो या इल्म सीखने वाले बनो या इल्म को ध्यान से सुनने वाले बनो या इल्म से मुहब्बत करने वाले बनो, मगर पाँचवें न बनो, वरना तुम तबाह हो जाओगे।"

(मुसनद अल-बज़्ज़ार, हदीस नंबर 3626)

सी०पी०एस० इंटरनेशनल और उसके नए सेंटर का मक़सद क्या है, इसे मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के इन अलफ़ाज़ से समझा जा सकता है—

"डाक से एक लिफ़ाफ़ा मौसूल हुआ। इसमें एक दीनी इदारे के हफ़्त-रोज़ा मैगज़ीन के एक पन्ने की फोटो कॉपी थी। यह मज़मून इदारे के बानी के बारे में है। इस मज़मून का उनवान है— ''चिराग़-ए-आलम-ए-इस्लाम थे''। इस उनवान के नीचे जो मज़मून है, वह गोया नस्र (prose) में शायरी है। ऐसा मालूम होता है कि मज़मून-निगार ने नात के तमाम शानदार अलफ़ाज़ बानी-ए-इदारा की क़सीदा-ख़्वानी में सर्फ़ कर दिए हैं। इस मज़मून को देखकर मुझे ख़्याल आया कि मेरी वफ़ात के बाद जो लोग मेरी तारीफ़ में इस क़िस्म के कसीदे लिखेंगे, वे मेरे झूठे मानने वाले होंगे। मेरे हक़ीक़ी मानने वाले वह हैं, जो मेरे मिशन को लेकर आगे बढ़ें, जो मेरे इस दुनिया से जाने के बाद इस दीनी जद्दोजहद के लिए पहले से ज़्यादा सरगर्म हो जाएँ।"

मेरा काम अल्लाह के सच्चे दीन का ऐलान-ओ-इज़हार है। मेरी सारी दिलचस्पी सिर्फ़ इस बात से है कि अल्लाह की बड़ाई बयान की जाए। पैग़ंबर-ए-इस्लाम की लाई हुई हिदायत को आज के इंसानों तक पहुँचाया जाए। लोगों को आने वाले हौलनाक दिन से होशियार किया जाए। मेरे बाद जो लोग मेरे इस मिशन के लिए सरगर्म हों, वही मेरे सच्चे

साथी हैं और जो लोग नज़्म-ओ-नस्र में मेरी तारीफ़ करें, उनसे मेरा कोई ताल्लुक़ नहीं। उनकी राह अलग है और मेरी राह अलग।''

(डायरी; 23 अप्रैल, 1985)

सी०पी०एस० इंटरनेशनल मौलाना की हिक्मत-ओ-मारिफत पर मबनी इल्मी विरासत को आगे बढ़ाने के लिए क़ायम किया गया है यानी इस्लाम को अस्री उस्लूब में तमाम इंसानों के सामने पेश करना। मॉडर्न फ़िक्री चैलेंज के मुक़ाबले में इस्लाम के लिए मौजूद नए इमकानात की तरफ़ रहनुमाई करना। क़ुरआन को ख़ुदा के मंसूबा-ए-तख़्लीक़ (Creation Plan)के एतिबार से तमाम इंसानों के लिए क़ाबिल-ए-फ़हम बनाना और उनकी अपनी ज़बान में आसानी से दस्तयाब कराना वग़ैरह।

मौलाना की तहरीर-ओ-तक़रीर से इंसान में कितनी तब्दीली आई है, इसे जानने के लिए 'अल-रिसाला' ख़बरनामों का मुताला किया जा सकता है। इसके अलावा 'अल-रिसाला' के ख़ुसूसी शुमारा दाई-ए-इस्लाम मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान (अगस्त-सितंबर, 2021) का भी मुताला किया जा सकता है। इसमें मशहूर मुस्लिम स्कॉलर डॉ. मुहम्मद अक़रम नदवी (डीन ऑक्सफोर्ड इस्लामिक सेंटर) का भी मज़मून है। उन्होंने अपने मज़मून में इस हक़ीक़त का एतिराफ़ इन अलफ़ाज़ में किया है कि "कौन है, जो इसका एतिराफ़ नहीं करे कि मौलाना ने बेशुमार इंसानों के ज़हन को मुतास्सिर किया, उनकी तहरीरों ने जदीद तालीम-याफ़्ता तबक़े की रहनुमाई में बड़ा किरदार अदा किया, उन्होंने मुसबत और पुर-अम्न तरीक़े से ठोस और पायदार काम करने का नमूना पेश किया और कितने मायूस लोगों को मायूसी व ना-उम्मीदी से निकाला और उन्हें जीने का हौसला दिया।'' इसी तरह जुल्फ़िक़ार ख़ान नामी एक साहब अपनी फेसबुक वाल पर लिखते हैं कि "मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की किताबें इंसानी रवैयों को बदलने में बहुत अहम किरदार अदा करती हैं। हर सफ़्हा सबक़-आमोज़ होता है।"

इस क़िस्म के तास्सुरात गोया इस बात की याददिहानी हैं कि जिन तहरीरों और तक़रीरों ने पहले बेशुमार लोगों की ज़िंदगियाँ बदली हैं, अब उन्हें ऐसे लोगों तक पहुँचाना चाहिए, जिन्हें यह पैग़ाम अब तक नहीं मिल सका है। सी०पी०एस० इंटरनेशनल का यही मक़सद है और इसी मिशन को लेकर हमें आगे बढ़ना है।

डॉ. फ़रीदा ख़ानम

ख़बरनामा इस्लामी मर्कज़— 284

23 और 24 नवंबर, 2024 को निज़ामुद्दीन वेस्ट में सी०पी०एस० इंटरनेशनल के नए सेंटर का उद्घाटन हुआ। इस अहम मौक़े पर हिंदुस्तान और बैरून-ए-मुल्क से सी०पी०एस० के मेंबरान ने शिरकत की। सी०पी०एस० के मिशन और मक़सद पर रोशनी डाली गई और बानी-ए-मिशन मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की ज़िंदगी और ख़िदमात को याद किया गया। डॉ. फ़रीदा ख़ानम, डॉ. सानियसनैन ख़ाँ, डॉ. रजत मल्होत्रा, मिस्टर नवदीप कपूर, मिस्टर ख़ुर्रम क़ुरैशी, मिस्टर फ़राज़ ख़ान, मिस्टर विक्रांत डागर, मिस्टर मूनिस इक़बाल और मिस स्तुति मल्होत्रा (नई दिल्ली), मोहतरमा फ़ातिमा सारा (बैंगलोर), मौलाना सैयद इक़बाल उमरी (तमिलनाडु), मौलाना फ़याज़ुद्दीन उमरी (गुलबर्गा), मौलाना शम्सुद्दीन नदवी (भोपाल), मिस्टर असद परवेज़ (अमेरिका), मिस्टर साजिद अनवर (यूएई), अबदुस्समद साहब (पुणे), हाफ़िज़ अबुल हकम दानियाल (पटना), डॉ. मुहम्मद असलम ख़ान (सहारनपुर), मिस्टर मुहम्मद अब्दुल्लाह (कोलकाता), मिस्टर हमीदुल्लाह हमीद और मिस्टर आमिर मोरी (कश्मीर), मिस्टर सलीम वानी (राजोरी), अय्याज़ साहब (जमशेदपुर), मोहतरमा फ़हमीदा ख़ानम (फ़ैज़ाबाद) और उनकी टीम के लोगों ने शिरकत की। इस मौक़े

पर मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की किताबों के अंग्रेज़ी और दीगर नेशनल और इंटरनेशनल ज़बानों में तर्जुमे-शुदा किताबें भी रिलीज़ की गईं, जिनकी तादाद 41 थी। मसलन— God and the Universe (तर्जुमा : ख़ुदा की दरियाफ़्त), The Issue of Blasphemy (तर्जुमा : शत्म-ए-रसूल का मसला) और Shared Wisdom वग़ैरह। इस प्रोग्राम से तमाम शुरका मारिफ़त-ओ-दावत की जद्दोजहद के लिए नया अज़म लेकर वापस हुए।

इस उद्घाटन समारोह में एक निहायत अहम चीज़ रिलीज़ की गई— सी०पी०एस० चैटबोट (सी०पी०एस० Chatbot)। यह चैटबोट मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की किताबों और उनकी क़ुरआन की तफ़्सीर और तर्ज़ुमे की बुनियाद पर तैयार किया गया है। इस्लाम, रूहानियत, अमन और ज़िंदगी के चैलेंजेज के बारे में सवाल करें और यह चैटबोट आपको मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब के साहित्य पर आधारित जवाब देगा। इस चैटबोट को इस्तेमाल करने के लिए नीचे दिए गए लिंक में से कोई लिंक क्लिक करें—

Whatsapp: https://wa.me/+917304285608

Website: www.cpsglobal.org

वज़ाहत : यह चैटबोट अभी आज़माइशी मरहले में है। अगर किसी सवाल का जवाब दुरुस्त नहीं हो या आपके पास इस बोट को बेहतर बनाने की कोई तजवीज़ हो, तो बराह-ए-करम हमें इस ईमेल पर इत्तिला करें— info@spiritualmessage.org

4 से 6 अक्टूबर, 2024 को मालेगाँव में एक सी०पी०एस० मीट रखी गई। इस मीट में महाराष्ट्र से ताल्लुक़ रखने वाले 18 सदस्य शरीक हुए। वहाँ उन्होंने आपस में मारिफ़त बेस्ड इंटरएक्शन किया और दावत के काम को कैसे आगे बढ़ाया जाए, इस पर ग़ौर-ओ-फ़िक्र किया।

तमाम सदस्यों ने ख़ुदा के काम के लिए नई स्पिरिट के साथ आगे बढ़ने का अज़म किया।

डॉ. मुहम्मद असलम ख़ान (सी०पी०एस० सहारनपुर) ने इत्तिला दी है कि 16 नवंबर, 2024 को चंडीगढ़ यूनिवर्सिटी ने सहारनपुर के होटल Oasis में एक एजुकेशनल प्रोग्राम का आयोजन किया। इस मौक़े पर डॉ. मुहम्मद असलम ख़ान भी मदऊ किए गए थे। उन्होंने तमाम मुअज़्ज़िज़ मेहमानों के दरमियान अंग्रेज़ी और हिंदी तर्जुमा-ए-क़ुरआन और दीगर किताबें बतौर तोहफ़ा तक़सीम कीं।

कैप्टन ख़ुर्रम क़ुरैशी, जो इस वक़्त एयर इंडिया में ख़िदमात अंजाम दे रहे हैं, बैरून-ए-मुल्क सफ़र करते रहते हैं और सी०पी०एस० इंटरनेशनल की आइडियोलॉजी से लोगों को मुतार्रिफ़ कराते हैं। मसलन 24 अक्टूबर, 2024 को उन्होंने नैरोबी (केन्या) में मुस्तफ़ा साहब और उनकी टीम से मुलाक़ात की। वे एक बड़ी मस्जिद के ट्रस्टी हैं। इस मिशन के बारे में सुनकर वे लोग बहुत ख़ुश हुए। स्वाहिली ज़बान में तर्जुमा-ए-क़ुरआन को देखकर उनकी ख़ुशी बहुत ज़्यादा बढ़ गई, क्योंकि स्वाहिली ज़बान में इतनी अच्छी ज़बान और तबाअत (printing) के साथ कोई तर्जुमा-ए-क़ुरआन मौजूद नहीं है। इसके बाद वे लोग ख़ुर्रम क़ुरैशी साहब को 'एडम्स दावत सेंटर' ले गए, जो वहाँ का एक मशहूर दावती इदारा है। इसी के साथ दीगर इस्लामी तंज़ीमों के ऐसे अफ़राद से भी राब्ता करवाया, जो वहाँ दावती काम कर रहे हैं। तमाम लोगों ने निहायत शौक़ से सी०पी०एस० मिशन से मुताल्लिक़ मालूमात हासिल कीं। वे सी०पी०एस० मिशन और स्वाहिली क़ुरआन से काफ़ी मुतास्सिर हुए।

11 अगस्त, 2024 को जामिया हमदर्द यूनिवर्सिटी के तलबा ने सी०पी०एस० इंटरनेशनल के क़ुरआन हॉल, सी०पी०एस० सेंटर, नई

दिल्ली में प्रेजेंटेशन पेश की। उनके उनवान ये थे— सी०पी०एस० इंटरनेशनल और इसके बानी मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की शख़्सियत का तजज़िया, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की तहरीरों की रोशनी में इस्लाम और आलमी अमन, मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की तहरीरों की रोशनी में ख़ुदा के तख़्लीक़ी मंसूबे का तारुफ़। प्रोग्राम के बाद तलबा ने कहा कि उन्हें सी०पी०एस० और मौलाना साहब की ख़िदमात के बारे में बहुत कुछ सीखने को मिला। यह प्रोग्राम तलबा के तालीमी प्रोजेक्ट्स का हिस्सा था, जिसके लिए जामिया हमदर्द के शोबा इस्लामिक स्टडीज़ ने सी०पी०एस० इंटरनेशनल से दरख़्वास्त की थी और मुस्तक़बिल में भी सी०पी०एस० इंटरनेशनल के तआवुन से वे अपने तलबा के लिए इस तरह का प्रोग्राम रखना चाहते हैं। तमाम शुरका को तर्जुमा-ए-क़ुरआन के साथ मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबों का एक-एक सेट दिया गया।

डॉ. रिको, जो एक जापानी स्कॉलर हैं और मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की आइडियोलॉजी पर जापान में रिसर्च कर रही हैं, वे 9 अगस्त, 2024 को सी०पी०एस० सेंटर तशरीफ़ लाईं और उर्दू मैगज़ीन 'अल-रिसाला' और अंग्रेज़ी मैगज़ीन 'स्पिरिट ऑफ़ इस्लाम' के हवाले से सी०पी०एस० इंटरनेशनल की चेयरपर्सन डॉ. फ़रीदा ख़ानम का इंटरव्यू लिया। आख़िर में उन्हें सी०पी०एस० की किताबों का एक सेट दिया गया।

14-15 सितंबर, 2024 को सी०पी०एस० इंटरनेशनल (बंगाल चैप्टर) ने कोलकाता में एक अमन कॉन्फ्रेंस आयोजित की। इस कॉन्फ्रेंस का मक़सद यह था कि बंगाली ज़बान और कल्चर से ताल्लुक रखने वाले लोगों की बड़ी तादाद जो मौलाना साहब को जानती और पढ़ती है, वह उनकी फ़िक्र को आगे बढ़ाए यानी स्पिरिचुअलिटी, अमन और मंसूबा-ए-तख़्लीक़ से तमाम इंसानों को आगाह करना। पश्चिमी बंगाल

के विभिन्न ज़िलों से तक़रीबन 90 अफ़राद ने इसमें शिरकत की। प्रोग्राम का उद्घाटन सी०पी०एस० की चेयरपर्सन डॉ. फ़रीदा ख़ानम के पैग़ाम से हुआ, जो उन्होंने रिकॉर्ड करके भेजा था। दूसरे प्रोग्रामों के अलावा मीडिया के ज़रिए सी०पी०एस० के पैग़ाम को आम करने के मौज़ू पर एक ख़ुसूसी सेशन भी आयोजित हुआ। इसके अलावा क़ुरआन स्टडी, डॉ. सानियसनैन ख़ान और डॉ. राजत मल्होत्रा के ज़रिए मारिफ़त और दावत के मुद्दे पर वीडियो पैग़ाम भी सुनाए गए। कॉन्फ्रेंस का इख़्तिताम मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान की तक़रीर 'आख़िरी पुकार' के ज़रिए किया गया। इस प्रोग्राम में शरीक होने वाले तमाम शुरका मिशन को आगे बढ़ाने के जज़्बे के साथ रुख़्सत हुए।

5 सितंबर, 2024 को कोलकाता में सी०पी०एस० की मेंबर मिस शबीना अली को 'मिशनरीज़ ऑफ़ चैरिटी' के एक अलग-अलग मज़हब के लोगों की दुआ के प्रोग्राम में बुलाया गया और 'Pilgrims of Hope' के मौज़ू पर ख़िताब करने के लिए कहा गया। उन्होंने अपनी तक़रीर में मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब का ज़िक्र किया और मौज़ू से मुताल्लिक़ ख़्यालात शेयर किए। यह तक़रीर हाज़िरीन और पैनल के शुरका को बहुत पसंद आई। बाद में फ़ादर रोज़ारियो (Fr. Rosario) ने उन्हें यह पैग़ाम भेजा कि बराहे करम कल की अपनी तक़रीर भेजें। मैं चाहता हूँ कि इसे अपने हफ़्तावार अख़बार में शाए करूँ। यह बहुत उम्दा है और इस क़ाबिल है कि दूसरे लोग भी इसे पढ़ें। प्रोग्राम के बाद उन्होंने तमाम शुरका के दरमियान सी०पी०एस० का दावती लिटरेचर तक़सीम किया।

8 सितंबर, 2024 को विद्या ज्योति कॉलेज ऑफ़ थियोलॉजी नई दिल्ली के फ़ादर विक्टर की क़ियादत में ईसाई प्रीस्ट की तर्बियत हासिल करने वाले तलबा का एक वफ़्द सी०पी०एस० सेंटर (नई दिल्ली) आया। यह एक इंटरफेथ मुलाक़ात थी। उन्होंने इस्लाम और

मौजूदा दौर के हवाले से सी०पी०एस० इंटरनेशनल के मेंबर्स के साथ तबादला-ए-ख़्याल किया। प्रोग्राम के बाद तमाम लोगों को अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरआन और दूसरे दावती लिटरेचर दिए गए।

5 अक्टूबर, 2024 को डॉ. रजत मल्होत्रा ने सी०पी०एस० इंटरनेशनल की नुमाइंदगी करते हुए पुरानी दिल्ली में मुस्लिम नौजवानों के एक इज्तिमे से ख़िताब किया। उनकी तक़रीर का मौज़ू ख़ुदा की मोहब्बत और ख़ुदा का ज़िक्र था। वे हर महीने इन नौजवानों से किसी एक इस्लामी मौज़ू पर ख़िताब करते हैं और फिर सवाल-ओ-जवाब का सेशन होता है।

18 मई, 2024 को मस्जिद इब्राहीम के मेंबरान ने 'ईद मिलन' का प्रोग्राम आयोजित किया था। इस मौक़े पर कामठी और नागपुर की मुअज़्ज़िज़ और ज़िम्मेदार शख़्सियतों को मदऊ किया गया था। शुरका में से ज़्यादातर लोग मराठी और हिंदी बोलने वाले थे। मेहमानों के साथ 'इस्लाम में अमन की तरक़्क़ी' के मौज़ू पर बातचीत हुई और सी०पी०एस० की जानिब से हिंदी, मराठी और अंग्रेज़ी ज़बानों में अमन से मुताल्लिक़ लिटरेचर तमाम मेहमानों को बतौर गिफ्ट दिए गए। तमाम शुरका ने इसे काफ़ी सराहा और इसे समाजी भाईचारे की जानिब एक मुसबत क़दम क़रार दिया।

सी०पी०एस० इंटरनेशनल के मेंबरान शादी के मौक़े को भी दावती काम के लिए इस्तेमाल करते हैं। मसलन— 30 सितंबर, 2024 को सी०पी०एस० रायचूर चैप्टर के मेंबर अमजद अहमद की बेटी की शादी की तक़रीब थी। इस मौक़े पर तर्जुमा-ए-क़ुरआन और दावती लिटरेचर तमाम मेहमानों के बीच तक़सीम किए गए। इस काम में फ़याज़ुद्दीन अमरी (कलबुर्गी) और अब्दुल सलाम उमरी (हैदराबाद) ने भी हिस्सा लिया। अंग्रेज़ी, कन्नड़, तेलुगु और उर्दू ज़बानों में तर्जुमा-ए-क़ुरआन के नुस्ख़े रखे गए थे। लोगों का रेस्पॉन्स बहुत अच्छा रहा (ज़हीरुद्दीन ख़्वाजा, रायचूर टीम)।

सी०पी०एस० लेडीज़ टीम की मिस फ़हमिदा ख़ान ने ख़बर दी कि 3 दिसंबर, 2024 को उन्होंने अयोध्या में एक क़रीबी रिश्तेदार की शादी में शिरकत की और वहाँ सी०पी०एस० इंटरनेशनल की किताबों की तक़सीम के लिए एक स्टॉल लगाया। दावत-ए-वलीमा में शिरकत करने वाले लोगों ने ख़ुशी और ताज्जुब के साथ इसे देखा। किसी ने कहा, "आपका स्टॉल इस शादी की सबसे दिलचस्प जगह बन गया है।" लोग यह जानकर हैरान थे कि किताबें फ्री में अवेलेबल हैं। कुछ लोगों ने वहीं बैठकर इन किताबों को पढ़ना शुरू कर दिया और बताया कि ये किताबें दीगर दीनी किताबों के मुक़ाबले बहुत आसान और क़ाबिल-ए-फ़हम हैं। सुप्रीम कोर्ट के एक वकील साहब ने तब्सिरा किया, "अयोध्या में इस तरह से स्पिरिचुअल किताबें तक़सीम करना वाक़ई हैरान करने वाला है।" बहुत से लोगों ने यह तरीक़ा पसंद किया और ख़ुशी-ख़ुशी किताबें लेकर गए।

2024 में हिंदुस्तान में मुख़्तलिफ़ मुक़ामात पर बुक फेयर हुए। मसलन— श्रीनगर चनार किताब मेला (17 से 25 अगस्त), लखनऊ बुक फेयर (27 सितंबर से 6 अक्टूबर), औरंगाबाद बुक फेयर (15 से 22 दिसंबर)। मौलाना सैयद इक़बाल अहमद उमरी और मिस्टर आसिफ़ ख़ान ने लोकल टीम सी०पी०एस० के तआवुन से उन बुक फेयर के स्टाल का इंतज़ाम सँभाला। हैदराबाद बुक फेयर (19 से 29 दिसंबर); पुरुलिया, पश्चिम बंगाल बुक फेयर (24 से 30 दिसंबर), चेन्नई बुक फेयर (27 दिसंबर, 2024 से 12 जनवरी, 2025); विजयवाड़ा, आंध्र प्रदेश, बुक फेयर (2-12 जनवरी, 2025)। इनका इंतज़ाम सी०पी०एस० इंटरनेशनल की रीजनल टीमों ने सँभाला। बिला तफ़रीक़-ए-मज़हब-ओ-मिल्लत काफ़ी तादाद में किताबों की चाहत रखने वाले और सी०पी०एस० मिशन से मोहब्बत करने वाले हमारे स्टॉल पर पहुँचे और बच्चों व बड़े-बुजुर्गों के लिए किताबें हासिल

कीं। इसी तरह काफ़ी तादाद में लोगों ने अपने लिए और अपने मुस्लिम या ग़ैर-मुस्लिम दोस्तों को गिफ्ट देने के लिए मुख़्तलिफ़ ज़बानों में तर्जुमा-ए-क़ुरआन भी हासिल किए।

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब की किताबें और तर्जुमा-ए-क़ुरआन आम लोगों तक मुख़्तलिफ़ शक्लों में पहुँचाए जा रहे हैं— हार्ड कॉपी, सॉफ़्ट कॉपी, ऑडियो फ़ॉर्मेट में यूट्यूब और स्पॉटिफ़ाय जैसे प्लेटफ़ॉर्म्स पर। अंग्रेज़ी तर्जुमा-ए-क़ुरआन की ऑडियो को स्पॉटिफ़ाय और अन्य प्लेटफ़ॉर्म्स पर 4.3 मिलियन से ज़्यादा लोगों ने डाउनलोड किया है। इस ऑडियो को शॉन बैरेट (Sean Barrett) ने ख़ूबसूरत अंदाज़ में रिकॉर्ड किया है। आप भी इसे डाउनलोड कर सकते हैं।

डिक्लेरेशन

मौलाना वहीदुद्दीन ख़ान साहब ने अपनी ज़िंदगी में बहुत सारे लोगों को ख़त लिखे या उनके ख़तों के जवाब दिए हैं। जिन हज़रात के पास ये ख़त मौजूद हैं, बराहे करम उनकी फ़ोटोकॉपी या असल ख़त हमें भेजें, ताकि इन्हें हम अपने रिकॉर्ड में माहफ़ूज़ रख सकें, शुक्रिया!

तफ़्सील के लिए राब्ता क़ायम करें : 9999944119

No. 50760/90

शांति और आध्यात्मिकता पर और किताबें।

आध्यात्मिक सेट

₹30/-

₹40/-

₹20/-

₹40/-

₹30/-

₹45/-

₹20/-

₹40/-